Con. 3. 4.8.47

750

अंक 4

संख्या 8

बुधवार

23 जुलाई,

सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

1. अनुकरणीय प्रांतीय विधान के सिद्धांतों के सम्बंध में रिपोर्ट 1
2. संघीय विधान सम्बन्धी रिपोर्ट 35

भारतीय विधान-परिषद्

बुधवार, 23 जुलाई सन् 1947 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक कांस्टियूशन हाल, नई दिल्ली, में 10 बजे माननीय डा. राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में आरम्भ हुई।

अनुकरणीय प्रान्तीय विधान के सिद्धांतों के सम्बन्ध में रिपोर्ट

***अध्यक्ष:** हम प्रांतीय विधान के खण्ड 15 पर पिछले दिन जो बहस स्थगित की गई थी उसे आरम्भ करेंगे। वह खण्ड पेश किया गया था और उसमें संशोधन भी पेश किये गये थे। इसलिये अब उस खण्ड पर और उन संशोधनों पर भी बहस की जा सकती है।

***श्री बी.एम. गुप्ते** (बम्बई: जनरल): श्रीमान्, अपने संशोधन के समर्थन में तर्क देने के पहले मैं अपने संशोधन और दो मूल संशोधनों के बीच जो अंतर है उसे संक्षेप में बताना चाहूंगा। अपने संशोधन में मैंने मूल खण्ड के दो पहले उपखण्ड रहने दिये हैं। इसके अतिरिक्त मैं इस पर भी जोर देना चाहता हूं कि आकस्मिक अवसर पर जिस अन्तिम अधिकारी को सुव्यवस्था करनी होगी वह दोनों में एक ही है। वह संघ का राष्ट्रपति है। मूल खण्ड और मेरे संशोधन में केवल इतना ही अन्तर है कि जब आकस्मिक परिस्थिति उत्पन्न हो तो उस समय के लिये मूल खण्ड में यह व्यवस्था है कि गवर्नर राज्यसंघ के राष्ट्रपति के पास रिपोर्ट भेजेगा, लेकिन मैंने यह सुझाव पेश किया है कि यदि आवश्यक हो तो गवर्नर तुरंत कार्यवाही करे और उसके बाद राष्ट्रपति के पास रिपोर्ट भेजे। मेरे विचार से पंडित कुंजरू का संशोधन केवल मूल खण्ड को दुहराता है और अधिक स्पष्ट कर देता है। रहा श्री मुंशी का संशोधन, उसका आशय मेरे संशोधन से भिन्न नहीं है। उसमें कुछ और बातें भी कही गई हैं। उससे पूरे खण्ड का दूसरा मसविदा बन जाता है और उसका वही रूप हो जाता है जो मेरे संशोधन को स्थान देने से होगा।

इस सम्बन्ध में मेरा यह तर्क है कि मूल खण्ड में जिस योजना की व्यवस्था है वह कार्यरूप में नहीं आ सकती। उपखण्ड 1 के अधीन गवर्नर को बहुत बड़ा

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री बी.एम. गुप्ते]

उत्तरदायित्व दिया गया है; यानी वह प्रांत की सुख शांति को गंभीर संकट से बचाने के लिये उत्तरदायी है। ऐसे बड़े उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिये उसे क्या अधिकार दिया गया है? यदि हम इसे अधिकार कहें तो उसे केवल राष्ट्रपति के पास रिपोर्ट भेजने का अधिकार है। इस अधिकार का भी वह कब प्रयोग कर सकता है? वह तभी इस अधिकार को प्रयोग में ला सकता है जब उसने उस आकस्मिक अवसर के लिये अपने मंत्रिमंडल से जिस कानून को वह आवश्यक समझता है उसे बनाने के लिये कहा-सुना हो और वह उसे इसके लिये राजी करने में सफल न हुआ हो। मैं यह राय प्रकट करना चाहता हूं कि यदि किसी समस्या को हल करने के लिये कानून बनाने की दीर्घकालीन प्रणाली का आश्रय लेना पड़े तो वह संकटापन्न काल की समस्या नहीं कही जा सकती। लेकिन यदि परिस्थिति भिन्न हो और वास्तव में गंभीर संकट उपस्थित हो तो मंत्रिमंडल से बातचीत व वाद-विवाद करने से अवश्य ही विलम्ब होगा, जो ऐसे संकटकाल में असहाय है। संकट आराम से उपस्थित नहीं होता, वह एकाएक प्रज्वलित हो उठता है और उसका विध्वंसक विस्फोट होता है। ऐसी परिस्थिति में केवल रिपोर्ट भेजने के अधिकार का कोई अर्थ नहीं है। यदि गवर्नर को अपने उत्तरदायित्व को सफलता से पूर्ण करना है तो उसे फौरन ही कार्यवाही करनी होगी और इसका उसे अधिकार होना चाहिये। मेरा संशोधन इसी की व्यवस्था करता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मेरे संशोधन का उद्देश्य गवर्नर को अनियंतित्र अधिकार दे देना है। पहले तो यह कहा गया है कि वह तभी कार्यवाही करेगा जब तुरंत कार्यवाही करने की आवश्यकता हो। यदि तुरंत कार्यवाही करने की आवश्यकता न हो तो गवर्नर को कोई कार्यवाही करने का अधिकार नहीं है। यदि राष्ट्रपति को सूचना देने और उनसे आज्ञा लेने का समय होगा तो गवर्नर कोई कार्यवाही नहीं करेगा। वह बिना किसी आवश्यकता के अपने ऊपर जिम्मेदारी क्यों ले? लेकिन यदि समय न हो तो वह शुरू की कार्यवाही करेगा और साथ ही राष्ट्रपति को भी सूचना देगा। इसमें सन्देह नहीं कि मुझसे यह कहा जा सकता है कि आखिर गवर्नर ही को तो इसका निर्णय करना है कि तुरंत कार्यवाही की जानी चाहिये कि नहीं। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि यह निर्णय गवर्नर को ही करना है परन्तु मेरी राय में यदि वह गलत कार्यवाही करता है तो राष्ट्रपति तुरंत ही उसे ठीक रास्ते पर ला सकते हैं। यदि उसकी कार्यवाही दूषित हो तो उसके सिर पर सार्वजनिक दोषारोपण की तलवार लटकाई गई है।

इसके अतिरिक्त यह आदेश है कि वह हाईकोर्ट के अधिकार अपने हाथ में नहीं लेगा। हाईकोर्ट नागरिक अधिकारों की चारदीवारी है और उसका अधिकार अक्षुण्ण बना रहना चाहिये। यह दूसरी सुरक्षा है। इसके अतिरिक्त गवर्नर को अपनी घोषणा की सूचना राष्ट्रपति के पास भेजनी होगी और बाद को उनके आदेशों का पालन करना होगा। इसका अर्थ यह है कि केवल दो या तीन दिन के लिये गवर्नर को यह अधिकार दिया गया है। राष्ट्रपति के हाथ में मामला पहुंचते ही गवर्नर का अधिकार समाप्त हो जाता है। निस्सन्देह मैंने इस प्रकार का आदेश रखा है कि घोषणा अधिक से अधिक 15 दिन के लिये लागू रहेगी। यदि वह इतने काल तक लागू रहे तो इसका उत्तरदायित्व राष्ट्रपति पर होगा न कि गवर्नर पर। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मेरे संशोधन का उद्देश्य यही है कि जब तक राष्ट्रपति मामले को अपने हाथ में न ले ले, गवर्नर गढ़ की रक्षा करते रहें।

मुझसे यह भी कहा गया है कि आजकल क्योंकि टेलीफोन, रेडियो और हवाई जहाज से दूरी बहुत कम हो गई है इसलिये गवर्नर को इस साधारण अधिकार को देना आवश्यक नहीं है और उसके लिये इतना ही काफी है कि वह राष्ट्रपति को सूचना दे दे। मेरा कहना यह है कि उन्हीं शक्तियों से, जिनके कारण दूरी कम हो गई है, जीवन का तापमान भी तीव्र हो गया है और पुराने जमाने में जब किसी स्थिति के उत्पन्न होने में कुछ समय लगता था, वह आजकल देखते-देखते उपस्थित हो उठती है। इसलिये इस तर्क से मेरे विचारों का खण्डन नहीं होता।

कुछ और लोग हैं जो गूढ़ आपत्ति किया करते हैं। कार्यक्रम से यह मालूम होता है कि उनमें से कुछ ने अपना विरोध कुछ ऐसे संशोधन पेश करके किया है कि जिनका उद्देश्य पूरे खण्ड को ही निकाल देना है। ये सज्जन इससे संतुष्ट नहीं हैं कि गवर्नर या राष्ट्रपति के कोई आकस्मिक अधिकार होने चाहियें। मेरी समझ से वे यह भूल जाते हैं कि हम एक क्रांतिकारी युग में रह रहे हैं। हम बहुत-कुछ एक संकटापन्न काल में रह रहे हैं। सारा संसार आर्थिक तथा राजनैतिक उथल-पुथल से एक तप्त-कटाह-रूप हो गया है। हिंसात्मक भावनायें प्रबल हैं। केवल तीन ही दिन पहले एक वीभत्स काण्ड घटित हुआ। संसार की इस विकट परिस्थिति का प्रभाव भारत पर भी पड़ा है और हमारी विचित्र समस्याओं ने स्थिति को और भी गम्भीर कर दिया है। लूटमार और आग लगने की

[श्री बी.एम. गुप्ते]

भयानक कहानियों के समाचार हमें प्रतिदिन मिलते रहते हैं। इसमें तो किसी को संदेह नहीं है कि एक नवीन भारत, महान् भारत का जन्म हो रहा है। लेकिन मैं यह कहूंगा कि यह नवीन भारत तब तक नहीं पनप सकता है और सम्पन्न नहीं हो सकता जब तक अपने इतिहास के इस तूफानी आपत्ति-काल में हम समाज में सुव्यवस्था न रख सकें। सारा वातावरण उत्तेजना से परिपूर्ण है। कोई नहीं कह सकता कि कब और कहां विस्फोट हो जाये। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि शासन और व्यवस्था के गम्भीर संकट में पड़ने पर उनके रक्षार्थ सरकार के अतिरिक्त कहीं सुरक्षित शक्ति हो। यह स्पष्ट है कि जब तुरन्त कार्यवाही करने की आवश्यकता हो तो उसका भार स्थानापन्न अधिकारी पर हो। यदि स्थानापन्न अधिकारी को ही यह कार्यवाही करनी हो तो वह विस्तृत मतगणना के आधार पर चुने हुए गवर्नर के अतिरिक्त और कौन हो सकता है? इसमें सन्देह नहीं कि अधिकतर मंत्रिमंडल ही तूफान को दबाने में समर्थ हो जायेगा और व्यवहार में कभी भी इस असाधारण अधिकार को प्रयोग में लाने की आवश्यकता न होगी। यदि इस अधिकार को कानूनी किताब में कीड़े खा जायें तो हमें प्रसन्नता ही होगी, किन्तु ऐसे अवसर आ सकते हैं जब मंत्रिमंडल उतनी योग्यता और शीघ्रता से कार्यवाही न कर सके जितनी कि हम उससे आशा करते हैं। ऐसी दशाओं में शक्ति गवर्नर के हाथ में सुरक्षित रहनी चाहिये।

हमसे कहा जाता है कि इससे मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व में हस्तक्षेप होगा। मैं यह पूछता हूं कि यदि शासन और व्यवस्था के हित में राष्ट्रपति लोकप्रिय मंत्रिमंडल को लांघकर काम कर सकता है तो गवर्नर, जो प्रांत का सर्वोच्च अधिकारी है, और जो वहीं रहता है और जो निर्वाचित नेता भी है, ऐसा क्यों न करे?

अन्त में मैं यह कहूंगा कि यदि यह नियंत्रित और सुरक्षाओं से सीमित अधिकार दो या तीन दिन के लिये भी एक ऐसे आदमी को विश्वासपूर्वक नहीं दिया जा सकता जिसे जनता ने उत्साह से चुना है और जो जनता के बहुसंख्यक लोगों का विश्वासपात्र है तो गवर्नर की स्थिति एक पुतले के समान हो जाती है; यद्यपि उस पर प्रांत का बहुत-सा रुपया खर्च होगा और उसे स्वयं भी काफी खर्च उठाना पड़ेगा, क्योंकि प्रौढ़ मतगणना के आधार पर जो चुनाव होगा उसमें बहुत खर्च लगेगा, प्रांत का भी और उसका भी। प्रौढ़ मतगणना के आधार पर

निर्वाचित किसी गवर्नर के लिये यह संतोषजनक स्थिति नहीं है। मैं आशा करता हूं कि यह सभा मुझसे सहमत होगी।

इसका मतलब यह नहीं है कि मैं शक्ति के अर्थ ही शक्ति देने के पक्ष में हूं या गवर्नर की स्थिति और प्रतिष्ठा के लिये शक्ति देने के पक्ष में हूं। मैं केवल यह कहता हूं कि अकस्मात संकटकाल उपस्थित हो सकता है और उसके लिये व्यवस्था करना व किसी को शक्ति देना आवश्यक है। हमारे पास प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुना हुआ गवर्नर है और वह लोगों का विश्वासपात्र है। उस पर इस विधान के निर्माताओं का विश्वास क्यों न हो? इसलिये मैं सिफारिश करता हूं कि सभा मेरे संशोधन को स्वीकार कर ले।

***माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्त प्रान्तः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि खण्ड 15 की जगह निम्नलिखित रखा जाये:

> **''जब कभी गवर्नर को यह विश्वास हो जाये कि प्रांत या उसके किसी भाग की सुख-शांति गंभीर संकट में पड़ने का भय है तो वह अपने विवेक से संघ के अध्यक्ष को रिपोर्ट दे सकता है।''**

जो तीन संशोधन पेश किये गये हैं उनका सम्बन्ध एक ही महत्वपूर्ण विषय से है क्योंकि शासन और व्यवस्था राज्य के ही नहीं किन्तु समाज के भी आधार हैं। इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि हमें विधान में ऐसे आदेशों को रखने की चिन्ता हो जिनसे सुख व शांति सुरक्षित रहे। लेकिन इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हम जिन साधनों का उपयोग करें उनके बारे में हमें सावधानी से विचार करना चाहिये। इस सम्बन्ध में मैं केवल श्री मुंशी के संशोधन पर अपना मत प्रकट करना चाहता हूं क्योंकि श्री गुप्ते ने स्वयं ही कहा है कि वह उनके संशोधन से अधिक विस्तृत है और उसका मसविदा भी उससे अच्छा है।

श्रीमान् श्री मुंशी के संशोधन में बहुत कुछ भारत सरकार के सन् 1935 ई. के कानून की धारा 93 को दुहराया गया है। इस कानून में जो प्रणाली निर्धारित की गई है उसे स्वीकार करने के पहले हमें उसमें निहित योजना को भी समझना चाहिये। इस कानून द्वारा हमको पूरा उत्तरदायित्व नहीं दिया गया था। मंत्रियों को महत्वपूर्ण स्थान तो दिया गया था लेकिन उन्हें अपने ही प्रांतों में सब अधिकार नहीं दिये गये थे। महत्वपूर्ण क्षेत्रों में गवर्नर के कानून बनाने के व शासन प्रबन्ध

[माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू]

सम्बन्धी अधिकार थे। वास्तव में यह कहना ठीक ही होगा कि जहां तक विधान के प्रांतीय अंग का सम्बन्ध था उसकी स्थिति केन्द्रीय थी। अब क्या हमारी यह इच्छा है कि नई व्यवस्था में भी गवर्नर वैसा ही महत्वपूर्ण व्यक्ति हो जैसा वह पहले था? मेरे विचार से श्रीमान् कोई कारण नहीं है कि हमारा विधान ऐसे अविश्वास पर आधारित हो जो सन् 1935 ई. के भारत सरकार के कानून में सर्वत्र छाया हुआ है। ब्रिटिश सरकार का यह भय था कि हिन्दुस्तानी मंत्री अपने अधिकारों का इस प्रकार उपयोग करेंगे कि जिच हो जायेगी और ब्रिटिश अधिकार को बनाये रखना असम्भव हो जायेगा। इसलिये उसने मंत्रियों के अधिकार में रोक लगा दी। अब हम उस पद्धति के अनुसार किसी प्रकार कार्य नहीं कर सकते। हमें अपने मंत्रियों का विश्वास करना चाहिये और प्रांतीय शासन प्रबन्ध में उनकी स्थिति केन्द्रीय होनी चाहिये।

श्रीमान्, सम्भव है कुछ सदस्य अमेरिका के उदाहरण से प्रभावित हों, जहां राज्यों में गवर्नर होते हैं और उन्हें शासन व व्यवस्था बनाये रखने का अधिकार होता है किन्तु अमेरिकन राज्यों में उत्तरदायी मंत्रिमंडल नहीं होते, इसके अतिरिक्त उन राज्यों में भी जहां गवर्नर के अधिकार सीमित होते हैं, लोगों की दृष्टि में, राजनीति और राज्य शासन दोनों में, उसका स्थान प्रतिष्ठित होता है। इसके अतिरिक्त वह सेना और यदि केन्द्रीय पुलिस सेना या राज्य की पुलिस सेना हो तो उस पर नियंत्रण रखता है। इस प्रकार उसका अपना पृथक ही स्थान होता है। हम किसी प्रकार भी राष्ट्रपति-प्रणाली और मंत्रिमंडल-प्रणाली का सम्मिश्रण नहीं कर सकते। इसलिये मेरे विचार से श्री मुंशी का संशोधन जिस सिद्धांत पर आधारित है उसे भी हम स्वीकार नहीं कर सकते। प्रांतीय विधान-कमेटी की रिपोर्ट का आधार उस आधार से भिन्न है, जिस पर सन् 1935 ई. का भारत सरकार का कानून बनाया गया था और ब्रिटिश पार्लियामेंट में पेश किया गया था।

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, हमें इस पर विचार करना चाहिए कि सन् 1935 ई. के भारत सरकार के कानून के अधीन गवर्नर किस प्रकार कार्य करता था। अपने निर्णयों को व्यवहार में लाने के लिये उसे यथेष्ट अधिकार दिये गये थे। जब सन् 1935 ई. के कानून के अनुसार सरकार न चल सके तो वह सरकार के कार्य संचालन का सारा भार अपने ऊपर ले सकता था। वह नौकरियों पर भी नियंत्रण रखता था। अखिल भारतीय नौकरियां जिनका सम्बन्ध जिलों के शासन से था

और जो भारत-मंत्री के अधीन थीं उनका कार्य भी वास्तव में उसी की इच्छानुसार होता था। जहां तक प्रांतीय नौकरियों का सम्बन्ध था उनके लोग गवर्नर से अपील कर सकते थे। इसके अतिरिक्त गवर्नर का एक विशेष उत्तरादायित्व यह था कि वह इन नौकरियों के लोगों के अधिकारों और हितों की रक्षा करे। इस प्रकार सभी नौकरियों के लोग, चाहे वे शाही नौकरी के लोग होते थे या प्रांतीय नौकरी के अंतिम रूप से गवर्नर के ही नियंत्रण में थे। इसके अलावा बिना उसकी स्वीकृति के पुलिस-सेना के संगठन और अनुशासन सम्बन्धी नियमों में कुछ भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। इसलिये प्रांतीय प्रबन्धकारिणी के कुछ साधनों पर उसका पूरा अधिकार था। जिस प्रकार का विधान हम बनाने जा रहे हैं यानी वह विधान जो इस रिपोर्ट में प्रतिपादित सिद्धांतों पर आधारित होगा उसके अधीन गवर्नर को ये अधिकार नहीं दिये जायेंगे। वे मंत्रियों को दे दिये जायेंगे। इस दशा में वह अपनी आज्ञाओं को अमल में कैसे ला सकेगा? वह एक विकट परिस्थिति में पड़ जायेगा। निस्संदेह वह एक निर्वाचित अधिकारी होगा लेकिन उसके और मंत्रियों के बीच विरोध होने की दशा में उसके लिये व मंत्रियों के लिये भी एक कठिन समस्या उत्पन्न हो जायेगी। इसकी कल्पना आसानी से की जा सकती है कि मंत्री कितनी कठिनाई में पड़ जायेंगे। गवर्नर नौकरियों पर जितना नियंत्रण रखेगा उतनी ही उनकी प्रतिष्ठा लोगों व नौकरियों के लोगों की दृष्टि में कम हो जायेगी और इससे निस्सन्देह शासन-प्रबन्ध में बड़ी पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी; उन्हें फिर उसी विकट परिस्थिति का सामना करना होगा, जिसका उन्हें वर्तमान गवर्नर की उपस्थिति में करना पड़ता है।

श्रीमान्, हमें इस पर विचार करना है कि शासन-व्यवस्था बनाये रखने के लिये जिस प्रणाली का सुझाव दिया गया है वह साधारणता हमारे उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होगा कि नहीं। क्या यह ठीक है कि हम एक ही आदमी को मंत्रियों पर निर्णय देने के लिये रखें? चाहे गवर्नर कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो और चाहे वह किसी तरीके से चुना गया हो, मेरी राय में यह बहुत ही अनुचित होगा कि मंत्रिमंडल के सामूहिक मत की तुलना में उसी के मत का मान हो, यद्यपि मंत्रिमंडल को उससे अधिक सूचना होगी। श्री मुन्शी के संशोधन से सहमत न होने के लिये यह दूसरा तर्क है और मेरे विचार से यह बहुत बलशाली तर्क है।

श्री गुप्ते ने कहा है और शायद श्री मुन्शी भी यही कहेंगे कि गवर्नर को जो अधिकार दिया गया है वह केवल प्रांत की सुख-शांति गंभीर संकट में पड़ने

[माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू]

पर प्रयोग में लाया जा सकता है। सन् 1935 ई. के भारत सरकार के कानून के अधीन गवर्नर सारी सरकार की बागडोर तभी अपने हाथ में ले सकता है जब उसे यह विश्वास हो जाये कि इस कानून के अनुसार प्रांत का शासन-प्रबन्ध नहीं हो सकता है। उस धारा की उपधारा (5) में यह आदेश है कि "इस धारा के अधीन जिन कार्यों का विवरण है उनको गवर्नर अपने विवेक से करेगा और इस धारा के अधीन गवर्नर बिना गवर्नर जनरल के अपने विवेक से सहमत हुए कोई घोषणा नहीं करेगा"। जिनको भारत सरकार के वर्तमान कानून पर विश्वास है उन्हें यह समझना चाहिये कि धारा 93 ने चाहे गवर्नर को जो भी अधिकार प्रदान किये हों, वह बिना पहले गवर्नर जनरल की राय लिये हुए कोई काम नहीं कर सकता है। इसलिये श्री मुन्शी के संशोधन से गवर्नर को सन् 1935 ई. के भारत सरकार के दिये हुए अधिकारों से भी अधिक अधिकार मिल जायेंगे। अब अगर संशोधन स्वीकार भी कर लिया जाता है तो भी गवर्नर जनरल के लिये यह सम्भव होगा कि वह अन्तिम रूप से इसका निर्णय करे कि गवर्नर की कार्यवाही न्यायोचित थी कि नहीं। श्रीमान् मेरी राय में यदि गवर्नर बिना गवर्नर जनरल के निर्णय की प्रतीक्षा किये हुए कोई सख्त कार्यवाही करे तो गवर्नर जनरल की प्रतिष्ठा को बहुत हानि पहुँच सकती है। यदि गवर्नर यह घोषणा करे कि सरकार के कार्य-संचालन का सारा भार व सब अधिकार उसने अपने हाथ में ले लिये हैं, तो यह स्पष्ट है कि यदि गवर्नर जनरल उससे सहमत न होगा तो उसे इस्तीफा देना पड़ेगा। इसके विपरीत यदि गवर्नर जनरल इस स्थिति का विचार करते हुए गवर्नर को अपनी घोषणा वापस लेने का आदेश न देगा तो वह स्वयं बड़ी कठिन परिस्थिति में पड़ जायेगा। वह अपने ही निर्णय के विरुद्ध आचरण करेगा और एक ऐसी नीति के परिणामों के लिये अपने को उत्तरदायी बनायेगा जिससे वह सहमत न हो। श्री गुप्ते का यह विचार था कि उनके संशोधन से गवर्नर को थोड़े समय के लिये स्वयं कार्यवाही करने का अधिकार मिल जाता है और उनके संशोधन व रिपोर्ट के खण्ड 15 में केवल यही अन्तर था। श्री गुप्ते को यह बहुत थोड़ा सा अंतर प्रतीत होता है किन्तु मेरी समझ से तो यह बहुत बड़ा अंतर है। यदि वास्तव में गवर्नर जनरल को ही यह निर्णय करना है कि क्या कार्यवाही की जाये तो हमें गवर्नर को अपने मंत्रियों को लांघकर और उनसे सब अधिकार अपने हाथ में लेकर स्थिति को न बिगाड़ने देना चाहिये।

श्रीमान्, जैसा कि मैं कह चुका हूँ, मैं अनुभव करता हूं कि इस सभा को इसकी बड़ी चिंता है कि किसी भी परिस्थिति में शासन और व्यवस्था को विश्रृंखल

न होने देना चाहिये। इसलिये अब प्रश्न यह है कि क्या हम बिना गवर्नर को उस अधिकार को दिये हुए, जो श्री मुंशी के संशोधन को स्वीकार करने से उसको मिलता है, अपने उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं। मैं पहले कह चुका हूं कि यदि प्रांतीय मंत्रिमंडल को लांघना है तो वह किसी एक व्यक्ति द्वारा न लांघा जाना चाहिये। उसे किसी ऐसे अधिकारी को लांघना चाहिये जो लोगों की दृष्टि में प्रांतीय मंत्रिमंडल से अधिक प्रतिष्ठित हो। इसके अतिरिक्त यह भी वांछनीय है कि प्रांतीय मंत्रिमंडल का सामूहिक मत किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं बल्कि एक समिति द्वारा अस्वीकार होना चाहिये, जो केवल एक प्रांत की नहीं बल्कि सारे देश की परिस्थिति पर विचार करने के योग्य हो। राष्ट्रपति और संघ-सरकार के अधिकारी ऐसे लोग हैं। इसलिये मेरी राय में प्रांत की सुख-शांति की रक्षा के लिये आप यदि किसी अधिकारी को सुरक्षित अधिकार देना चाहते हैं तो ये अधिकार केन्द्रीय सरकर को दिये जाने चाहियें। प्रत्येक देश में केन्द्रीय सरकार अन्तिम रूप से देश की व देश के किसी भाग की शांति के लिये उत्तरदायी है। क्योंकि उसका यह उत्तरदायित्व है इसलिये इसे पूरा करने के लिये उसे आवश्यक अधिकार भी प्राप्त होने चाहियें। इसलिये श्रीमान, मैं यह कहूंगा कि मेरा संशोधन श्री गुप्ते और श्री मुंशी के संशोधनों से कहीं अच्छा है। प्रांतीय विधान के सिद्धांतों की रिपोर्ट को इस सभा के विचारार्थ पेश करते हुए सरदार पटेल ने जिस मत का प्रतिपादन किया था यह उसी के अनुरूप है। हम जो कुछ भी चाहते हैं वह इससे पूरा हो जाता है। इससे गवर्नर और उसके मंत्रिमंडल के बीच झगड़ा भी न होगा और उसे कोई ऐसा उत्तरदायित्व भी न देना होगा जो उस समय तक पूरा नहीं हो सकता है जब तक नौकरियों के लोग अन्तिम रूप से उसी के प्रति उत्तरदायी न बनाये जायें। इसका अर्थ यह होगा कि हम भारत सरकार के कानून की उसी योजना का अनुसरण करेंगे जिसकी हम इतने वर्षों से निन्दा करते आ रहे हैं। श्रीमान्, मेरे विचार से उन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, जिनके हम समर्थक हैं, हम इस संशोधन की विचार-धारा को नहीं स्वीकार कर सकते। इसलिये हमें मंत्रिमंडल के उत्तरदायित्व के सिद्धांत को ही स्वीकार करना चाहिये, क्योंकि यही किसी विधान में स्थान पा सकता है। मैंने जो सुझाव दिया है वह किसी संघीय विधान के सिद्धांतों के विरुद्ध न होगा। यदि मेरा मत मान लिया जाये तो उसका अर्थ केवल यह होगा कि शांति और व्यवस्था की सुरक्षा के सम्बन्ध में केन्द्रीय सरकार की स्थिति सुदृढ़ हो जायेगी। यह कोई ऐसी बात नहीं है जो उत्तरदायी या संघीय शासन के विरोध में हो। चूंकि श्रीमान इस सिद्धांत का अनुसरण करके देश की सुख-शांति की रक्षा बिना उत्तरदायी शासन

[माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू]

के सिद्धांतों पर आघात किये हुए की जा सकती है। इसलिये मैं अनुरोध करता हूं कि यह सभा मेरे संशोधन की ओर ध्यान दे।

***श्री टी. प्रकाशम्** (मद्रासः जनरल): श्रीमान् मैंने बड़ी दिलचस्पी और बड़े ध्यान से पंडित कुंजरू का तर्क सुना, लेकिन उनका यह कहना मेरी समझ में नहीं आया कि शक्ति केन्द्र को दी जानी चाहिये और जब कभी गवर्नर यह देखे कि शांति संकट में पड़ी हुई है तो उसे केवल केन्द्र के पास रिपोर्ट भेजनी चाहिये और उससे आज्ञा लेनी चाहिये।

***माननीय सदस्यः** आपका भाषण सुनाई नहीं देता।

***श्री टी. प्रकाशम्ः** अच्छी बात है। सन् 1935 ई. के भारत सरकार के कानून और जिस कानून को हम बनाने जा रहे हैं, उसका उल्लेख न करते हुए यह एक साधारण बुद्धि की बात है कि जब शांति भंग होने का बहुत खतरा हो तो स्थानापन्न व्यक्ति को तुरंत स्थिति सम्हालने का अधिकार होना चाहिये उसे स्थिति संभालने की कोशिश करनी चाहिये और तब केन्द्र को रिपोर्ट भेजनी चाहिये। यह साधारण बुद्धि की बात है और किसी देश के भी कानून में इसे स्थान दिया जाता है। मुझे आशा है कि यह विधान-परिषद्, जो कि एक सार्वभौम-सत्ता-सम्पन्न सभा है, जब पहला ही कानून इस उद्देश्य से बना रही है कि कार्य-स्वतंत्रता हो, प्रांतीय स्वायत्त-शासन हो और ब्रिटेन से शक्ति लेकर देश में स्वतंत्रता की स्थापना हो तो उसे इसके लिये सावधान रहना चाहिये कि पहले ही क्षण या कुछ ही समय के बाद शासन व व्यवस्था भंग न हो जाये और इसका प्रबन्ध करना चाहिये कि स्थानापन्न व्यक्ति केवल खड़ा-खड़ा घटनाओं को देखता न रहे और संघ-सरकार को रिपोर्ट भेजकर केवल आज्ञा प्राप्त करने के लिये प्रयत्न न करता रहे। श्रीमान, मैं यह कहूंगा कि इस विधान-परिषद् को ऐसी व्यवस्था नहीं करनी चाहिये। यह कर्त्तव्य-पालन के साधारण सिद्धांतों के विरुद्ध है। श्रीमान्, मुझे इसकी चिंता नहीं है कि इस काम की जिम्मेदारी गवर्नर पर हो या किसी मंत्री पर या पुलिस के अफसर पर। उस अफसर, उस स्थानापन्न व्यक्ति को स्थिति सम्हालने का अधिकार होना चाहिये और उसका प्रथम कर्त्तव्य यह है कि वह शांति भंग न होने दे। जब स्थिति शुरू से ही इतनी बिगड़ जाये कि उसे सम्हालना उसकी शक्ति में न रह जाये या जब वह परास्त हो रहा हो तो उसी समय उसे केन्द्र से या राष्ट्रपति से सेना के लिये या किसी दूसरी प्रकार की सहायता के लिये कहना चाहिये।

पंडित कुंजरू यह तर्क दे रहे थे कि सन् 1935 ई. के भारत सरकार के कानून द्वारा गवर्नर को जो अधिकार दिये गये हैं, उन्हें हमें स्वीकार न करना चाहिये। उनका यह तर्क मेरी समझ में नहीं आया। इस विधान में गवर्नर का जो रूप है वह सन् 1935 ई. के भारत सरकार के कानून में नहीं है। प्रांत का गवर्नर अब कोई अंग्रेज नहीं होगा। इस विधान के अधीन वही व्यक्ति गवर्नर होगा जिसे सारा प्रांत प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुनेगा। उसे ऐसी स्थिति में रखकर और उसे यह अनुभव कराकर कि वह प्रांत की किसी विशेष जाति या वर्ग के लिये उत्तरदायी नहीं है बल्कि वह प्रांत के हर एक व्यक्ति के लिये, जिसने उसे चुना है उत्तरदायी है। क्या हमारे लिये यह कहना उचित है कि चाहे वह यह सब कुछ हो और चाहे वह लोगों द्वारा निर्वाचित हो लेकिन हमें उसे वह अधिकार नहीं देने चाहियें जो सन् 1935 ई. के भारत सरकार के कानून द्वारा गवर्नरों को दिये गये हैं।

श्रीमान्, सन् 1935 ई. के भारत सरकार के कानून के अधीन हम गवर्नरों के साथ सन् 1937 ई. से काम करते रहे हैं। दक्षिण भारत में जब मैं थोड़े काल के लिये प्रधान मंत्री था तो पहले वर्ष हमें बहुत ही गम्भीर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। श्रीमान, आपकी अनुमति से मैं आपसे तथा इस सभा के सदस्यों से कहना चाहता हूँ कि उत्तरी भारत में जैसी शांति रही वैसी दक्षिणी भारत में नहीं रही। परन्तु इसका कारण यह नहीं था कि वहां कोई ऐसी परिस्थिति नहीं थी बल्कि यह कि जहां गड़बड़ हुई वहीं बिना किसी की आज्ञा की प्रतीक्षा किये हुए वह सावधानी से दबा दी गई। दक्षिण भारत में बहुत गंभीर साम्प्रदायिक दंगे का भय था। उस परिस्थिति का सामना किस प्रकार किया गया? यद्यपि स्थिति गंभीर थी परंतु एक भी आदमी की जान नहीं ली गई। वह कैसे संभाली गई। हमारे मुस्लिम लीग के मित्र और प्रांत में लोगों के सभी नेताओं ने बड़ी नेकनीयती और सावधानी से काम लिया। मालूम हो गया कि दंगा होने वाला है और वे लोग रात को मेरे दरवाजे पर आये और कहा कि खतरा उपस्थित है। हम क्या कर सकते थे? हम फौरन ही उस जगह पर पहुँचे। परमात्मा की कृपा से ही हम रक्तपात और मृत्यु को रोक सके। लोगों ने ही, हिन्दू और मुसलमान दोनों ने ही स्थिति सम्हाल ली। दोनों सम्प्रदायों के लोगों ने शान्ति समितियां स्थापित कीं और वे उस इलाके में सेना और पुलिस के पहुँचने के पहले ही गश्त लगाने लगे। सब कुछ इतने अच्छे ढंग से किया गया कि कुछ भी नहीं हुआ, यद्यपि उस सारे इलाके में, उस जगह

[श्री टी. प्रकाशम्]

से लेकर रेलवे की पटरियों के पास-पास बिल्कुल उत्तर तक बहुत बड़े दंगे का अन्देशा था।

आपकी अनुमति से मैं यह भी बताना चाहता हूँ कि जिस समय अकाल ने विकट रूप धारण कर लिया था, अन्न की गाड़ियाँ मद्रास से पन्द्रह सौ मील की दूरी तक नहीं जा सकती थीं। इसका प्रबन्ध करने का काम पुलिस को सौंपा गया। जब उनको मालूम हआ कि ऐसी शक्तियां, जो उपद्रव के लिये संगठित की गई थीं, गाड़ी रोकने वाली हैं तो उन्होंने तैयारियां कर लीं और 1500 मील रेल की पटरी को सुरक्षित कर दिया, जिसके फलस्वरूप अन्न की गाड़ी जा सकीं और संकट टल गया। कोई भी यह आशा कैसे कर सकता था कि जिस व्यक्ति पर शासन-व्यवस्था की जिम्मेदारी थी या गवर्नर स्वयं, जिसे भी सन् 1935 ई. के कानून के अधीन अधिकार था केन्द्र को, संघ-सरकार के अध्यक्ष को रिपोर्ट भेजता और उनकी आज्ञा की प्रतीक्षा करता! क्या ऐसा करना खतरे से खाली होता? मुझे आशा नहीं थी कि यह प्रस्ताव इस रूप में उपस्थित किया जायेगा। मुझे मालूम है कि जब यह बहस किसी अन्य जगह हो रही थी तो पहला आक्रमण गवर्नर के पद पर ही किया गया था। यह मेरी समझ में आता है। यदि आप गवर्नर की नियुक्ति का ही विरोध करते हैं उसको कोई स्थान ही नहीं देना चाहते और मंत्रिमंडल को ही उत्तरदायी बनाना चाहते हैं तो यह बात दूसरी है। लेकिन बात यह नहीं थी। मैं अपने नेताओं को और प्रांतीय विधान कमेटी को, जिसने इस प्रांतीय विधान का मसविदा तैयार किया है, बधाई देता हूं। उन्होंने एक ही पंक्ति लिखकर सारे राष्ट्र का उत्थान कर दिया और प्रौढ़ मतगणना को फिर से व्यवहार में लाकर हमें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था उन्हें दूर कर दिया। प्रौढ़ मतगणना कोई नई चीज नहीं है यद्यपि हमारे कुछ मित्र यह समझते हैं कि यह ब्रिटेन की देन है। कंजीवरम् से बीस मील की दूरी पर उत्तररामरूर के गांव के एक मंदिर की पत्थर की दीवारों पर प्रौढ़ मतगणना के सम्बन्ध में एक शिलालेख है। एक हजार वर्ष पूर्व सारी व्यवस्था प्रजातंत्रात्मक थी। हममें से कई लोगों का यह विचार है कि चुनाव की प्रजातंत्रात्मक प्रणाली हमने ब्रिटेन से पाई है; यह बात नहीं है। उस मन्दिर की पत्थर की दीवारों पर आपको तामिल भाषा में खुदा हुआ इस आशय का एक लेख मिलेगा कि एक हजार वर्ष पूर्व प्रौढ़ मतगणना के आधार पर प्रजातंत्रात्मक चुनाव हुआ करता था। उसमें बताया गया है कि प्रौढ़ मतगणना की

पद्धति थी। पर्चियां डालने के लिये लकड़ी के बक्स नहीं थे। खजूर की पत्तियां पर्चियों का काम कर देती थीं और वे बरतनों में छोड़ी जाती थीं। इस ढंग से वे देश का शासन-प्रबन्ध करते थे और गांवों में भी यह प्रथा थी। यह इस देश का दुर्भाग्य था कि हमें बुरे दिन देखने पड़े और अन्य राजे हम पर राज्य करने लगे। हमारी सब प्राचीन चीजें गुम हो गई और हम गुलाम हो गये। यहां तक कि जो कुछ हमने प्राप्त किया है उसे हम ब्रिटेन की देन समझते हैं। प्रौढ़ मतगणना को फिर से जीवित किया गया है और उसके आधार पर गवर्नर को एक विशेष स्थान दिया गया है। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि यह सब कुछ अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कैनेडा या किसी अन्य देश के विधान से नहीं लिया गया है। इन नेताओं और इस कमेटी ने देश की वर्तमान परिस्थिति को भी ठीक तौर से समझा है। अब हमें किस प्रकार की व्यवस्था करनी चाहिये। मैं प्रजातंत्र की ब्रिटिश प्रणाली का समर्थक था और जिन मित्रों ने ये संशोधन पेश किये हैं, उनकी भी यही भावना रही है। मुझे इसकी बड़ी चिंता थी कि हमें ब्रिटिश प्रणाली का अनुसरण करना चाहिये। हमने उसकी नकल की और हमें कई प्रकार के अनुभव हुए। हमारे नेताओं को कई प्रकार के अनुभव हुये और हमारे देश को जो हानि हुई है और उसकी जो दशाएं हैं उनको ध्यान में रखते हुए उन्होंने प्रौढ़ मतगणना से गवर्नर के निर्वाचन का सुझाव दिया है और इस प्रकार एक ही पंक्ति से सारे राष्ट्र को बहुत ऊँचा उठा दिया है। उन्होंने इस देश के प्रत्येक स्त्री-पुरुष को, जिसके लिये कांग्रेस इतने वर्षों से लड़ रही है यह अनुभव करा दिया है कि आखिर उन्हीं की सरकार के लिये तो वे गवर्नर को रख रहे हैं और वह उनके ही प्रति उत्तरदायी होगा। गवर्नर को कुछ कार्यवाही करने का अधिकार होना चाहिये। यदि गवर्नर की उपस्थिति में कुछ हो रहा हो तो क्या वह उसे उसी जगह न रोके, जब कि ऐसा करना उसकी शक्ति में है? यह सुझाव पेश करना कि कुछ न किया जाना चाहिये और गवर्नर को सन् 1935 ई. के कानून के अधिकारों को प्रयोग में न लाने देना चाहिये, ठीक नहीं है और न यह उचित ही है। सन् 1935 ई. के विधान से किसी अच्छी बात को लेने में कोई हर्ज नहीं है। इस प्रस्ताव को प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी प्रकार के मतभेद के स्वीकार कर लेना चाहिये। मुझे इसका दुख है कि इसे टालने के लिये ऐसा भी प्रस्ताव रखा गया कि जब तक संघ का अध्यक्ष सेना न भेजे या सलाह या आदेश न दे तो सारे मामले को स्थगित रखना चाहिये। मैं इस सभा से अनुरोध करता हूं कि इस प्रकार के किसी सुझाव को स्वीकार न करें। यदि हम यह कहें कि स्थिति का सामना किये बिना गवर्नर को इस जगह

[श्री टी. प्रकाशम्]

चले आना चाहिये तो सारा संसार हम पर हंसेगा; यदि हम इस संशोधन को स्वीकार करें तो हमारी मूर्खों में ही गिनती होगी।

***पं. लक्ष्मीकांत मैत्र** (पश्चिमी बंगाल: जनरल): श्रीमान् इस सभा के सामने जो प्रस्ताव रखा गया है उससे एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा होता है और मैं सभा से प्रार्थना करता हूं कि किसी नतीजे पर पहुँचने के पहले वह उसके सभी पहलुओं पर विचार कर ले। श्रीमान्, मैं इस देश के एक अभागे भाग से आया हूं जहां शासन और व्यवस्था के भंग होने से और उसके लिये उत्तरदायी अधिकारी के हस्तक्षेप न करने से अत्यंत रक्तपात हुआ है और अनगनित कठिनाइयों और हानि का सामना करना पड़ा है। इसी कारण मैं अपने माननीय मित्र श्री मुंशी के संशोधन के पक्ष में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। इस संशोधन का उद्देश्य क्या है? यह प्रांतीय गवर्नरों के लिये कुछ असाधारण अधिकारों का प्रस्ताव करता है जिन्हें वे संकटापन्न परिस्थिति में अपने विवेक से प्रयोग में लायेंगे। सभा को इसकी ओर ध्यान देना चाहिये कि इन अधिकारों का गवर्नर के प्रतिदिन के कार्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। इन अधिकारों को वह केवल ऐसी संकटापन्न स्थिति में प्रयोग में लायेगा जब शासन व व्यवस्था के बिलकुल भंग होने का भय हो या कुछ हद तक वह भंग हो गई हो और तुरन्त कार्यवाही करने की आवश्यकता हो। मैं इस सभा के प्रत्येक सदस्य से पूछता हूं कि क्या वह आकस्मिक अवसरों पर शासन-प्रबंध के अधिकारी को भी इस प्रकर के अधिकार से वंचित करना चाहता है? मेरे माननीय मित्र पंडित कुंजरू ने जो सुंदर तर्क दिया है उसकी मैं सराहना करता हूं; किन्तु कोई भी व्यक्ति आदरपूर्वक उनसे भिन्न मत प्रकट कर सकता है। मैं उन्हें बताना चाहता हूं कि मुझे सन् 1935 ई. के भारत सरकार के कानून की धारा 93 के विरुद्ध कोई जोरदार टिप्पणी नहीं करनी है। मेरे विचार से धारा में कुछ बहुमूल्य आदेश हैं। हमें केवल यह शिकायत है कि धारा 93 के आदेशों का अक्सर दुरुपयोग ही हुआ है। सब कुछ कहने और करने के बाद भी संसार का सबसे अच्छा विधान भी यदि लोगों में उसे उसी भावना से प्रयोग में लाने का निश्चय, सद्भाव तथा बुद्धि न हो जिस भावना से वह बनाया गया है, तो वह लोगों के किसी उपयोग का नहीं हो सकता। इस विधान के अधीन जो व्यक्ति गवर्नर नियुक्त होगा वह आखिर होगा कौन? वह कोई विदेशी नहीं होगा। वह एक हिन्दुस्तानी होगा; वह नामजद नहीं किया जायेगा; वह

सार्वभौम प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुना जायेगा और इस कारण लोग उसका विश्वास करेंगे और उसका आदर करेंगे। उसकी बहुत प्रतिष्ठा होगी। इस प्रकार इस पद के लिये उस व्यक्ति को चुनने के बाद क्या आप उसे गवर्नमेंट हाउस में एक पुतले के समान रखना चाहते हैं? या किसी ऐसी स्थिति में जब तुरंत कार्यवाही करने की आवश्यकता हो आप उससे कुछ काम लेना चाहते हैं? ऐसे अवसर आ सकते हैं जब उसे तुरंत कार्यवाही करनी होगी। मैं इसे अच्छी तरह समझता हूँ कि इस अधिकार के दुरुपयोग की आशंका है, परन्तु मैं आपको बतलाना चाहता हूं कि यह भय बहुत कुछ काल्पनिक ही है। ऐसे बहुत ही कम अवसर आयेंगे जब उसे इस अधिकार को प्रयोग में लाने के लिये कहा जायेगा। इस संशोधन के विरुद्ध क्या आपत्ति है? यह कहा गया है कि शासन-प्रबन्ध करने वाले अफसरों पर गवर्नर का कोई अधिकार नहीं होगा और इसलिये उसके हस्तक्षेप करने से कोई प्रभाव न पड़ेगा।

मैं अपने माननीय मित्र श्री कुंजरू से पूछता हूं कि क्या संघ के अध्यक्ष का प्रांत के शासन-प्रबन्ध के अधिकारियों पर सर्वोच्च अधिकार नहीं होगा? इसलिये यदि हम प्रांतीय अधिकार का पूर्ण रूप से विश्लेषण करें तो प्रांतीय अधिकार-संघ के अध्यक्ष के अधिकार से परे न होगा। दो प्रतिबन्धों की व्यवस्था की गई है। पहले तो प्रांतीय गवर्नर से तुरंत कार्यवाही करने और संघ के अध्यक्ष को इसकी रिपोर्ट भेजने को कहा जाएगा कि उसने किन कारणों की बिना पर यह कार्यवाही की। कोई गवर्नर, जो चुना गया हो और जिसे गंभीर उत्तरदायित्व सौंपा गया हो और जो विधान भंग करने के अभियोग पर न्यायाधीशों के सामने दोषी ठहराया जा सकता हो, क्या बिना विचार करे और स्वेच्छाचारिता से काम करेगा? मुझे ऐसा विश्वास नहीं है। इसके विपरीत मुझे तो यह विश्वास है कि वह योग्यता से और ठीक ढंग से काम करेगा।

इसके अतिरिक्त यह आकस्मिक कार्यवाही केवल एक या दो सप्ताह के लिये होगी। आदेशों से यह स्पष्ट है कि घोषणा दो सप्ताह बाद प्रयोग में नहीं रहेगी, जब तक कि गवर्नर या संघ का अध्यक्ष इस सम्बन्ध में आज्ञा न दे। इस प्रकार जब तक उसे यह न मालूम हो कि मंत्रिमंडल में फूट हो गई है और शासन व व्यवस्था के भंग होने का भय है और यदि तुरंत कार्यवाही न की गई तो स्थिति बिगड़ने की संभावना है, तब तक वह हस्तक्षेप न करेगा और जब वह हस्तक्षेप

[पं. लक्ष्मीकांत मैत्र]

करेगा तो वह तुरन्त ही संघ के अध्यक्ष को, जिन्हें असाधारण अधिकार दिये गये हैं सूचित करेगा। इन कारणों से मेरा यह मत है कि विधान में कोई ऐसा आदेश होना चाहिये जिससे शासन व व्यवस्था बनाये रखने और शासन प्रबन्ध भंग न होने देने का अंतिम उत्तरदायित्व किसी व्यक्ति पर होना चाहिये तथा उसे उसका पूरा भार वहन करना चाहिये और वह व्यक्ति गवर्नर ही होना चाहिये। इस सीमित उद्देश्य के लिये यह काम उसे सौंपा जाना चाहिये। श्रीमान्, मैं इस संशोधन का समर्थन करता हूँ।

अध्यक्ष: इसके पूर्व कि मैं किसी अन्य सदस्य से बोलने के लिये कहूं, मैं यह कहना चाहता हूं कि आज से इस महीने की 31 तारीख तक केवल छः दिन रह गए हैं और सारे संघ-विधान पर विचार करना है, इसलिये मैं वक्ताओं से प्रार्थना करता हूं कि वे अधिक समय न लें ताकि अधिक सदस्य बहस में भाग ले सकें। मेरे पास आधे दर्जन ऐसे सदस्यों के नाम हैं जो बोलना चाहते हैं।

एक माननीय सदस्य: मैं बहस बन्द करने का प्रस्ताव पेश करता हूं।

अध्यक्ष: कुछ अन्य सदस्य भी अपनी जगहों से उठ रहे हैं। जिस क्रम से मेरे पास नाम लिखे हुये हैं उसी क्रम से मैं वक्ताओं से बोलने के लिए कहूंगा।

श्री के. सन्तानम् (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, क्या बोलने का अवसर प्राप्त करने के लिए आपके पास नाम भेजना आवश्यक है? क्या सदस्य आपका ध्यान आकर्षित नहीं कर सकते?

श्री एम.एस. अणे (दक्षिणी रियासतें): क्या यह काफी नहीं है कि यदि कोई सदस्य बोलना चाहें तो वे अपनी जगहों में खड़े हो जाएं और इस प्रकार अध्यक्ष का ध्यान आकर्षित करें?

अध्यक्ष: यह आवश्यक नहीं है कि कोई सदस्य बोलना चाहे तो वे अपना नाम मेरे पास भेजें। लेकिन यदि कोई सदस्य अपना नाम भेज देते हैं और उठ खड़े होते हें तो यह स्वाभाविक है कि वे मेरा ध्यान पहले आकर्षित करेंगे। मैं जिस प्रकार सूची में नाम लिखे गए हैं, उस क्रम से बोलने के लिये नहीं कहूंगा और उन्हीं सदस्यों से बोलने के लिए कहूँगा जिनकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित होगा। मैं सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि वे पांच-पांच मिनट में अपने भाषण समाप्त कर दें।

*__माननीय श्री वी.जी. खेर__ (बम्बई : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं पांच मिनट का समय भी न लूंगा। मैं बोलने के लिये इसलिये उठा हूं कि यह विषय इतना महत्वपूर्ण है कि...!

*__श्री बी. पोकर साहब बहादुर__ (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, मुझे एक व्यवस्था सम्बन्धी बात पूछनी है। मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या यह आवश्यक नहीं है कि उन सभी सदस्यों को, जिन्होंने संशोधन पेश किये हैं, पहले बोलने दिया जाये ताकि सभी संशोधनों पर एक साथ विचार हो सके?

*__अध्यक्ष:__ जहां तक इस खण्ड का सम्बन्ध है, सभी संशोधन पेश हो चुके हैं और इस खंड और संशोधनों पर विचार हो रहा है।

*__मि. बी. पोकर साहब बहादुर:__ मैंने इस संशोधन में एक संशोधन पेश किया हैं। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि मुझे इस समय बोलने दिया जाये। शायद यह मान लिया जायेगा कि वह पेश हो चुका है।

*__माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल__ (बम्बई: जनरल): अब यह नहीं समझा जा सकता है कि वह पेश हो चुका है। कई सदस्य अपने विचार प्रकट कर चुके हैं; चूंकि यह अभी तक पेश नहीं किया गया इसलिये अब कुछ नहीं हो सकता है।

*__अध्यक्ष:__ कितने ही सदस्य अभी तक बोल चुके हैं और सदस्य महोदय ने इसके पहले इसे पेश नहीं किया। उनका संशोधन 21 जुलाई को मिला था। उसी दिन और सभी संशोधन पेश किये गये थे। यदि सदस्य महोदय अपना संशोधन पेश करने का इरादा रखते थे तो उस समय वे मेरा ध्यान आकर्षित कर सकते थे।

*__माननीय श्री वी.जी. खेर:__ अध्यक्ष महोदय पं. हृदयनाथ कुंजरू के संशोधन का विरोध करने के लिये मैं उठा हूँ। श्रीमान्, जैसा कि मैं कह चुका हूं, इस वाद-विवाद में भाग लेने की मेरी इच्छा नहीं थी लेकिन मैंने यह अनुभव किया कि माननीय श्री कुंजरू का संशोधन इस प्रकार का है कि प्रत्येक सदस्य का यह कर्तव्य है कि वह उसका विरोध करे। मैं यह कहूँगा कि यह दिखाने के लिये कि वह कितना निरर्थक है उसे केवल पढ़ देने की आवश्यकता है। वह इस प्रकार है।

*__माननीय पं. हृदयनाथ कुंजरू:__ वह उस संशोधन के समान ही है जो पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त द्वारा प्रस्तावित किया गया है।

***माननीय श्री बी.जी. खेर:** तब तो एक के बजाय आप दोनों दोषी ठहराये जायेंगे।

''जब कभी गवर्नर को यह विश्वास हो जाये कि प्रान्त या उसके किसी भाग की सुख-शान्ति गंभीर संकट में पड़ने का भय है तो वह अपने विवेक से राज्य-संघ के अध्यक्ष को रिपोर्ट दे सकता है।'' मुझे ज्ञात नहीं है कि यदि वर्मा में इस प्रकार का विधान है तो उसमें ऐसे खण्ड की व्यवस्था है या नहीं; किन्तु यह सोचकर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं कि यदि वहां इस प्रकार का विधान था तो ऐसी घटनायें कैसे घटित हुई? हमारे यहां एक ऐसा व्यक्ति होगा जो प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुना जायेगा और जिसका प्रधान मंत्री उतना भक्त न होगा जितने कि लोग उसके भक्त होंगे। लेकिन वह केवल इतना ही कर सकता है कि संघ के अध्यक्ष को तार दे और प्रतीक्षा करता रहे। परन्तु श्रीमान, यह बड़े दुख की बात है कि माननीय सदस्य ने अपने संशोधन में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं की है कि तार और टेलीफोन के कट जाने पर गवर्नर को क्या करना चाहिये? श्रीमान्, मैंने यह देखा है कि बम्बई से केवल 15 मील की दूरी पर भी गवर्नर या प्रधान-मंत्री या किसी अन्य अधिकारी से 20 घंटे तक सम्पर्क स्थापित करना लोगों के लिए असम्भव हो गया। ऐसी संकटमय स्थिति में गर्वनर से क्या कार्यवाही करने की आशा की गई है? उसे केवल अध्यक्ष के पास रिपोर्ट भेजने को कहा गया है। इस प्रकार आधुनिक यातायात के काल में भी प्रौढ़ मतगणना के आधार पर निर्वाचित गवर्नर को केवल यह करना है कि वह संघ के अध्यक्ष के पास रिपोर्ट भेज दे और प्रतीक्षा करता रहे तो यह सोचकर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं कि इसका नतीजा क्या होगा। इसलिये मैं इस संशोधन का विरोध करता हूँ, क्योंकि यदि यह स्वीकार कर लिया गया तो इससे बड़ी हानि होगी।

इसके अतिरिक्त, जैसा कि मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता बता चुके हैं, पिछले अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि किसी ऐसे देश में जहां अधिकारी-गण विभिन्न दलों की राजनीति में फंसे रहते हैं, यह आवश्यक है कि कोई ऐसा व्यक्ति हो जो कुचक्रों और दलों की उथल-पुथल से अलग रहे और लोगों की सुरक्षा की व्यवस्था करे। हम यहां केवल इसकी व्यवस्था करने जा रहे हैं कि गवर्नर उत्तरदायित्व को वहन कर ले और तब संघ के अध्यक्ष को, जिसकी सहायता उसका मंत्रिमंडल करेगा, स्थिति की सूचना दे और यह कि अध्यक्ष या तो गवर्नर

के कार्य का समर्थन करे या उसका विरोध करे। यदि आप प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुने हुए गवर्नर को रख रहे हैं तो उसे संघ के अध्यक्ष के पास तार भेजने के लिये एक नाममात्र का अधिकारी न बनाइये। पंडित कुंजरू ने जो संशोधन पेश किया है उसका मैं विरोध करता हूँ।

***श्री बी. पोकर साहब बहादुरः** अध्यक्ष महोदय, मुझे एक व्यवस्था संबन्धी आपत्ति करनी है। मैंने श्री मुँशी के संशोधन में एक संशोधन की सूचना दी थी। मुझे यह ख्याल था, और मेरा यह ख्याल ठीक भी था कि अध्यक्ष का यह कर्तव्य है कि जिन लोगों ने संशोधनों को पेश करने की सूचना दी हो उनसे वह संशोधन पेश करने को कहें। मैंने इसे आवश्यक नहीं समझा कि मैं खड़े होकर अपने संशोधन को पेश करने की अनुमति मांगू। 21 ता. को मुझे अपना संशोधन पेश करने को नहीं कहा गया, केवल श्री मुंशी का संशोधन पेश हुआ और अधिक विचार स्थगित कर दिया गया। इसलिये मैं प्रार्थना करता हूं कि मुझे अपना संशोधन पेश करने दिया जाये।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** जब अध्यक्ष किसी व्यवस्था-सम्बन्धी प्रश्न पर अपना निर्णय दे चुके तो क्या वही प्रश्न फिर उठाया जा सकता है?

***अध्यक्षः** जब अध्यक्ष कोई निर्णय दे चुकता है तो वही बात फिर नहीं उठाई जा सकती। इस सम्बन्ध में बहस समाप्त करने के पहले मैंने यह स्पष्ट कर दिया था कि सभी संशोधन पेश कर दिये गये हैं। उस समय माननीय सदस्य ने मुझे नहीं बताया कि उनका संशोधन पेश नहीं हुआ है। मुझे खेद है कि अब इस समय मैं उन्हें उसे पेश करने की आज्ञा नहीं दे सकता।

*__डा. पी.के. सेन__ (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपने भाषणों के लिये जो समय निश्चित किया है उसी के अन्दर अपना भाषण समाप्त कर दूंगा और मैं यथासम्भव संक्षेप में बोलूंगा। इस सभा में जो प्रश्न उपस्थित किया गया है उसका सम्बंध कुछ मौलिक सिद्धांतों से है। मैं स्पष्ट शब्दों में यह कहना चाहता हूं कि मैं अपने माननीय मित्र श्री मुंशी और श्री गुप्ते के संशोधनों का अपनी पूरी शक्ति से समर्थन करना चाहता हूं। मेरे विचार चाहे कुछ भी हो, मैं उन्हें अलग रख देने के लिये तैयार हूं क्योंकि मुझे विश्वास है कि यह सभा अपनी बुद्धिमत्ता और सूझ से ठीक ही रास्ता अपनायेगी। किसी प्रकार का भ्रम होने की आवश्यकता नहीं है। पहले तो यह आदेश संकटकाल के लिये है और संकटकाल

[डा. पी.के. सेन]

हमेशा नहीं आता। संकटकाल संकटकाल ही है, उसकी न तो परिभाषा दी जा सकती है और न उसके सभी पहलुओं का वर्णन ही किया जा सकता है। मालूम तो यह पड़ता है कि वह एकाएक आ गया परन्तु वास्तव में वह बड़ी चालबाजी से उपस्थित होता है। इस संशोधन में इसकी कल्पना की गई है कि गवर्नर एक ऐसा व्यक्ति होगा जिसमें सूझ और पूर्वदर्शिता के गुण होंगे और दृढ़ता से व तुरंत ही कार्य करने की क्षमता भी होगी। वह यह समझेगा कि किस अवसर पर उसे हस्तक्षेप करके अपने प्रदेश को विपत्ति से बचा लेना चाहिये। मेरे विचार से जब हमने प्रौढ़ मतगणना के आधार पर गवर्नर को चुनने का निर्णय किया तो हमने ऐसे ही व्यक्ति की कल्पना की थी। हम केवल इसकी व्यवस्था करना चाहते थे कि वह लोगों का अपना आदमी हो और उसे सारे प्रांत के लोगों का समर्थन प्राप्त हो। हम यह चाहते थे कि निर्वाचन-शाला में प्रत्येक स्त्री और पुरुष इसका विचार करके आयें कि वे ऐसे व्यक्ति के पक्ष में पर्ची डालने आ रहे हैं जिसमें ठीक समय में ठीक काम करने की क्षमता होगी। इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती कि कोई गवर्नर जान-बूझ कर अपने मंत्रिमंडल के मत की उपेक्षा करेगा। इसे सभी स्वीकार करते हैं कि चूंकि हमने परिषदात्मक शासन प्रणाली स्वीकार की है इसलिये शासन-प्रबंध का अंतिम अधिकार प्रधान मंत्री के नेतृत्व में मंत्रिमंडल को प्राप्त है। जब प्रधानमंत्री का अपने मंत्रियों से सामंजस्य और सद्भाव रहेगा और सभी पहिये ठीक चलेंगे तो काम सुचारू ढंग से चलेगा। ऐसी ही दशा में यह प्रजातंत्रात्मक व्यवस्था ठीक ढंग से चल सकती है। किंतु इसका भी भय है कि कभी अकस्मात संकटकाल उपस्थित हो जाये और मंत्रिमंडल उसका सामना न कर सके। यह हो सकता है कि विभिन्न दलों में एकता न हो और मतभेद हो। दलबन्दी के आधार पर बनाई हुई किसी भी सरकार को इस प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाये कि एक पुर्जा दूसरे पुर्जे को चलाने के बजाय बाधक सिद्ध हो और राज्य की मशीन ठीक ढंग से न चलने लगे या या जब कोई बहुत बड़ा संकट उपस्थित हो जाये तो उसी दशा में, जैसी कि इस संशोधन में कल्पना की गई है, गवर्नर सारी शक्ति अपने हाथ में ले सकेगा और आवश्यक कार्यवाही करने के बाद तुरन्त संघ के अध्यक्ष के पास सूचना भेजेगा ताकि वह अपने विवेक से जो कुछ भी आवश्यक समझे, करे। गवर्नर को जो आकस्मिक परिस्थिति के अधिकार दिये जाने वाले हैं उनका विस्तार इतना ही है। प्रश्न यह उठता है कि क्या इस प्रजातंत्रात्मक तथा

परिषदात्मक शासन-प्रणाली में क्या शासनारूढ़ दल हमेशा इस प्रकार कार्य करेगा कि इन आकस्मिक परिस्थिति के अधिकारों की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। यदि हमें यह विश्वास हो तो गवर्नर को इन अधिकारों को प्रयोग में लाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। परन्तु मैं फिर पूछता हूँ कि क्या हमें ऐसा विश्वास हो सकता है? क्या हमें इस शासन-प्रणाली का इतना अनुभव हो गया है कि हम विश्वास के साथ यह कह सकें कि प्रधान मंत्री या मंत्रिमंडल से भिन्न कार्य करने और अपने हाथों में सारी शक्ति ले लेने की किसी को आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी? वास्तव में बात यह है कि हमें किसी एक व्यक्ति के शासन का भय है और इसी भय के कारण इस संशोधन का इतना जोरदार विरोध हुआ है। यह कहा जाता है कि हम 24 घंटे के लिये भी एक व्यक्ति का शासन सहन नहीं कर सकते। यह प्रजातंत्र के मौलिक सिद्धांतों के विरुद्ध है, लेकिन यह भुला दिया जाता है कि संशोधन में केवल यह कल्पना की गई है कि प्रजातंत्र के ढांचे के गिर पड़ने पर ही या उसमें स्थिति को सम्भालने की क्षमता न होने पर ही एक ऐसे व्यक्ति को आकस्मिक परिस्थिति के सीमित अधिकार दिये जायें जो सारे प्रांत की प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुना गया है और जो निस्सन्देह हमारा विश्वास-भाजन है। बिना ऐसे अधिकारों को दिये हुए प्रांत का गवर्नर केवल एक नाममात्र का अधिकारी होगा। जिस धारा में गवर्नर के चुनाव की व्यवस्था है उसमें यह कल्पना की गई है कि वह संकटमय स्थिति को सम्भाल सकेगा और मेरे विचार से इसी कारण प्रौढ़ मतगणना के आधार पर उसके चुनाव का निर्णय किया गया था। जैसा कि मैं कह चुका हूं कि मैं अपने विचार अलग रख देने के लिये तैयार हूं लेकिन मैं आशा करता हूं कि हमें इस सम्बन्ध में कुछ भी भ्रम न होगा कि हम थोड़े काल के लिये भी अपने को एक व्यक्ति के शासन के अधीन रख रहे हैं। यह केवल आकस्मिक परिस्थिति की व्यवस्था है और इसी कारण वह न्यायोचित भी कही जा सकती है। इसलिये मैं विनय-पूर्वक यह मत प्रकट करता हूँ कि इस संशोधन को स्वीकार कर लेना चाहिये।

*__माननीय पं. गोविन्दवल्लभ पंत__ (संयुक्त प्रांत: जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझे वास्तव में खेद है कि मुझे इस प्रस्ताव पर बोलना पड़ रहा है। मेरा बोलने का इरादा नहीं था, वह इसलिये नहीं कि मैं इस सम्बन्ध में कोई विचार नहीं रखता बल्कि इसलिये कि मैं साधारणतया अपने आदरणीय मित्रों के विचारों का सर्वसाधारण के सम्मुख विरोध नहीं करना चाहता। परन्तु मेरे दुर्भाग्य से पं. कुंजरू एकाएक कह उठे कि उन्होंने जो संशोधन पेश किया है वह पहले मेरे

[माननीय पं. गोविंदवल्लभ पंत]

नाम से था। यह ठीक है और इससे मैं इंकार नहीं करता। फिर श्री खेर ने कहा कि कुंजरू के नाम के साथ उन्होंने मेरे नाम को भी उन दो मूर्खों में सम्मिलित करना है जिन्होंने मिलकर इस प्रस्ताव की सूचना दी है।

*__माननीय श्री बी.जी. खेरः__ मैंने यह नहीं कहा।

*__माननीय पं. गोविन्दवल्लभ पंतः__ आपने इसी आशय के कुछ शब्द कहे। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि अब वे समझते हैं कि उन्होंने जो कुछ कहा वैसा उनका मतलब नहीं था। मैं इसके लिये दुखित नहीं हूं, लेकिन फिर भी जब अपने दल का निर्णय मुझे मानना है और श्री मुंशी के संशोधन का समर्थन करना है, तो मैं समझता हूं कि मुझे इसका कारण बताना चाहिये कि मैंने इस संशोधन की सूचना देने की धृष्टता क्यों की है।

*__अध्यक्षः__ क्या मैं यह बता सकता हूं कि इस सभा का किसी दल के निर्णयों से कोई सम्बन्ध नहीं है?

*__माननीय पं. गोविन्दवल्लभ पंतः__ इस सम्बन्ध में मुझे कुछ आपत्ति नहीं है। लेकिन फिर भी मैं यह समझता हूं कि सदस्यों को एक बड़े समूह के लोगों की बुद्धि के अनुसार काम करना चाहिये न कि अपनी ही बुद्धि के अनुसार। कम से कम जहां तक मेरा सम्बन्ध है मैं बड़े समूह की सम्मति को ही स्वीकार करने के लिये तैयार रहता हूं। फिर भी मुझको अपनी सफाई देनी है और बताना है कि उस समय मैंने किन कारणों को महत्वपूर्ण समझा। बात यह है कि जब सुख-शांति के गम्भीर संकट में पड़ने का भय हो तो ऐसी नाजुक परिस्थिति को कौन सम्हाले और कैसे सम्हाले? हमने विधान की जिस योजना को स्वीकार किया है उसे आपने देख लिया है। मैं इसे अच्छी प्रकार समझता हूं कि हम इससे सहमत हैं कि गवर्नर प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुना जाये परन्तु निर्वाचन की इस प्रणाली को स्वीकार करके हम उसे सहस्रबाहु नहीं बना देते। उसके फिर भी दो ही हाथ और दो ही आंखे होंगी। प्रश्न यह है कि नौकरियों के लोग किस व्यवस्था के अनुसार कार्य करेंगे। यदि यह समझा जाये कि प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुना हुआ गवर्नर दिन प्रतिदिन के शासन-प्रबन्ध में प्रबन्धकारिणी पर नियंत्रण रखे तो यह मेरी समझ में आता है कि वह किसी नाजुक स्थिति को सम्हाल सकेगा। परन्तु उसे सारे शासन-प्रबन्ध

से अलग रखने से और उससे कोई ऐसी नाजुक स्थिति सम्हालने को कहने से, जिसे शासन–प्रबन्ध के कर्त्ता–धर्ता भी न सम्हाल सकें, बहुत ही गड़बड़ पैदा हो जायेगी। यह समझ में आता है कि शासन–प्रबन्ध बराबर गवर्नर के हाथ में रहे और किसी नाजुक स्थिति के उपस्थित होने पर वह उसे सम्हाले। परन्तु किसी आदमी को बराबर पानी के बाहर रखने से और तूफान आने पर उससे नाव चलाने को कहने से केवल विपत्ति का ही सामना करना पड़ेगा। मुझे भय है कि यह कभी भी व्यावहारिक रूप नहीं ले सकता।

साधारणतया गवर्नर का कोई काम नहीं होता और अब भी दो सप्ताह के अतिरिक्त उसे केवल सम्वाददाता का काम दिया गया है। इन दो हफ्तों में वह बेचारा वह सारी योग्यता, बुद्धिमत्ता और विद्वता कहां से प्राप्त कर लेगा जो साधारणतया उसे प्राप्त न होगी? प्रजातंत्रात्मक शासन का अर्थ यह है कि निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा लोगों का शासन हो। अब वास्तव में आप किस प्रकार की स्थिति की कल्पना कर रहे हैं? वह यह है कि गवर्नर का अपने मंत्रियों से मतभेद हो जायेगा, वह धारासभा को राजी न कर सकेगा और अपने मत को स्वीकार न करा सकेगा। गवर्नर को हमेशा इसकी स्वतंत्रता है कि वह धारासभा के सम्मुख जाये और उससे कहे कि एक नाजुक स्थिति उत्पन्न हो गई है और यह कि दुर्भाग्य से मंत्रिमण्डल ठीक निर्णय नहीं कर सका है और इसलिये धारासभा को शासन–प्रबन्ध तथा उसके कर्त्ता–धर्ताओं के प्रति अपना दृष्टिकोण बदल देना चाहिए। यदि गवर्नर धारासभा को विश्वास दिलाने में असमर्थ हो और यदि वह मंत्रिमंडल को भी, जिसमें एक दो नहीं बल्कि मेरे विचार से 15 या 20 लोग होंगे, विश्वास न दिला सके तो उसको फिर भी नीचे की सभा के 400 सदस्यों, ऊपर की सभा के 60 सदस्यों और मंत्रिमण्डल में धारासभा के जो 20 सदस्य हों उनके मत की उपेक्षा करने का अधिकार होगा। जब कोई नाजुक स्थिति उठ खड़ी हो और उसके अधीन कोई प्रबन्धकारिणी न हो तो वह बेचारा इतने बड़े भार को कैसे वहन कर सकता है? आपको इस समस्या को हल करना है और मैं यह कहूँगा कि यदि इतने ही से सब कुछ समाप्त हो जाता तो मैं उस संशोधन की सूचना न देता। परन्तु बात यह है कि इससे नौकरियों की निष्ठा को हानि पहुँचती है। इससे एक ऐसा तत्व उत्पन्न हो जाता है जो प्रजातंत्र के मनोवैज्ञानिक आधार को ही उलट देता है और इससे लोग एक ऐसे आदमी से रक्षा की आशा करते हैं जो वास्तव में रक्षा करने में असमर्थ है। इससे नौकरियों के लोगों को यह आदेश मिलता है कि उन्हें संकटमय काल के लिये हमेशा तैयार रहना चाहिये और

[माननीय पं. गोविन्दवल्लभ पंत]

यह कि ऐसे काल में उन्हें मंत्रियों के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति की आज्ञा का पालन करना होगा। इससे बहुत गंभीर संकट उपस्थित हो सकता है। यदि श्री खेर को इसकी सूचना नहीं है तो उनके लाभार्थ मैं यह भी बताना चाहता हूं कि केवल मेरा और श्री कुंजरू का ही यह मत नहीं है। इस प्रश्न पर बहुत विस्तार से विचार हुआ है। प्रांतीय विधान-समिति और केन्द्रीय विधान-समिति की संयुक्त बैठक के सामने भी अपना दृष्टिकोण रखने का मुझे अवसर मिला था और दोनों ने यह स्वीकार कर लिया था कि श्री मुंशी के संशोधन में जिस प्रकार का अधिकार देने का सुझाव है उसे गवर्नर को न देना चाहिये। प्रांतीय विधान-समिति ने भी इस विषय पर विचार किया था और उसने भी अन्तिम रूप से यह मत स्वीकार कर लिया था कि गवर्नर के लिये इतना बड़ा उत्तरदायित्व पूरा करना सम्भव नहीं है। यद्यपि मुझे इसका खेद है कि श्री खेर से मेरा साथ छूट गया है, लेकिन इन समितियों में जिन लोगों के साथ मैं सम्पर्क में आया उनसे क्षतिपूर्ति हो गई है। इसलिये यद्यपि इस क्षति के लिये मुझे खेद है, परन्तु इसकी पूर्ति हो ही सकती है।

श्री खेर ने पूछा है कि यदि तार काट दिये जायें और मंत्रियों की हत्या कर दी जाये तो उस स्थिति में क्या होगा? मैं कहता हूं कि ऐसा संकटमय काल कभी न आयेगा। मैं अपने मंत्रियों की कभी भी हत्या न होने दूंगा। जब तक मैं प्रधान मंत्री हूं, किसी को भी मंत्रियों की हत्या न करने दी जायेगी। यदि मैं अपने को इस कर्तव्य का पालन कने में असमर्थ पाऊं तो मैं पद-त्याग कर दूंगा। यदि प्रधान मंत्री अपनी व अपने मंत्रियों की रक्षा नहीं कर सकता तो उसे पदत्याग कर देना चाहिये और किसी अन्य व्यक्ति के लिये स्थान रिक्त कर देना चाहिये, ताकि कोई दूसरा उससे अधिक शक्तिशाली प्रधान मंत्री उसका स्थान ले ले। उन्होंने पूछा है कि यदि तार कट जायेंगे तो क्या होगा? उन्होंने यह भी पूछा है कि यदि सभी मंत्रियों की हत्या हो जायेगी तो क्या होगा? यदि अकेला गवर्नर ही जिसे सूचना देनी है, जिसे तारों की रक्षा करनी है और जिसे आने-जाने वालों के लिये सड़कों को खुला रखना है, मार डाला जायेगा तो क्या होगा? लोग भूल जाते हैं कि यदि गवर्नर भी मार डाला जाये और प्रधान मंत्री भी मार दिया जाये तो सभा को, धारासभा को तो कुछ नहीं हुआ, वह आगे बढ़ सकती है, हस्तक्षेप कर सकती है और सुख-शांति की सुरक्षा के लिये सभी आवश्यक कार्यवाही कर सकती है। इसलिये जो संशोधन पेश किया गया है, वह यदि मुझे यह कहने दिया जाये तो

मैं कहूंगा कि वह एक अजीब गोरखधंधा है। उससे बड़ी दुर्गंध आती है। मुझे इन शब्दों के कहने की स्वतंत्रता नहीं है। हमें उसे निगलना है।

अब श्रीमान् आप उस कानून की योजना को तो देखें जिससे यह धारा 93 नकल की जा रही है। इस कानून के अधीन गवर्नर को ही नौकरियों पर नियंत्रण रखने का अधिकार है। भारत मंत्री से सम्बन्धित नौकरियां भी गवर्नर के ही नियंत्रण में रखी गई हैं। वे सुरक्षा और तरक्की के लिये उसी का मुंह ताकती हैं। आपको ज्ञात होगा कि सन् 1935 ई. के कानून के अधीन बिना गवर्नर की अनुमति के किसी भारत-मंत्री की नौकरी के आदमी का तबादला एक जगह से दूसरी जगह नहीं हो सकता। इसके फलस्वरूप सारी प्रबन्धकारिणी उसके हाथ में रहती है और वही संकटमय काल उपस्थित होने के लिये उत्तरदायी होता है। नौकरियों पर उसका पूर्ण नियंत्रण होने पर भी वह स्थिति को बिगड़ने देता है। जिस संगीत की मुख्यत: उसीने रचना की है, उसे उसको सुनना चाहिये। परन्तु जब कि सन् 1935 ई. के कानून के अधीन गवर्नर ऐसा रूख नहीं अपना सकता और उसे गवर्नर जनरल की स्वीकृति प्राप्त करनी होती है और गवर्नर जनरल को भी पार्लियामेंट को जवाब देना होता है, इसमें गवर्नर किसी के प्रति भी उत्तरदायी नहीं है। कोई भी सभा उससे इसे स्पष्ट करने के लिये नहीं कह सकती है कि उसने एक नाजुक स्थिति में बहुत बड़ी भूल कैसे की। इस संशोधन का विचार करके मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। किसी बहुत ही नाजुक स्थिति में जबकि मंत्रिमंडल को अच्छी से अच्छी कार्यवाही करने की स्वतंत्रता होनी चाहिये, गवर्नर हस्तक्षेप कर सकता है और मंत्रियों की स्थिति को उचित और ठीक ढंग से सम्हालने से रोक सकता है। किसी बहुत ही नाजुक स्थिति में जब मंत्रिमंडल को पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिये, उसके मार्ग में अड़ंगे डाल दिये जायेंगे, जिसका नतीजा यह होगा कि यदि संकट टल सकता था तो वह उपस्थित ही होकर रहेगा। मुझे ऐसा भय है।

मैं समझता हूं कि मैंने बहुत समय ले लिया है। इस पर बहुत कुछ कहा जा सकता है। इस काम का मुझे थोड़ा-बहुत अनुभव है और मैं आपको कई उदाहरण दे सकता हूं। मैं अब भी समझता हूं कि जिस संशोधन की मैंने सूचना दी थी, वह अनुचित नहीं था।

*__माननीय श्री बी.जी. खेर:__ अपनी ओर से सफाई देने के लिये श्रीमान् मैं दो-एक शब्द कहना चाहता हूँ। मेरा उद्देश्य श्री पंत को रुष्ट करने का नहीं था,

[माननीय श्री बी.जी. खेर]

और मैं नहीं जानता कि मैंने कोई ऐसी बात कही हो जिससे उनको दुख पहुंचा हो। श्री पंत ने उसे अपने ही ऊपर ले लिया है...।

*__माननीय पं. गोविन्द वल्लभ पंत:__ नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं।

*__माननीय श्री बी.जी. खेर:__ आखिर वह बहस ही तो थी।

*__माननीय श्री हुसैन इमाम__ (बिहार : मुस्लिम): अध्यक्ष महोदय, श्री पंत के ओजस्वी भाषण के बाद मेरा काम बहुत कुछ सरल हो गया है। मेरा वही मत है जो पंडित पंत का है और जिसे पंडित कुंजरू ने व्यक्त किया है। मैं अनुभव करता हूं कि यह संशोधन विचार-पूर्वक पेश नहीं किया गया है। यह प्रजातंत्र के सिद्धांतों के विरुद्ध है और यह तर्कपूर्ण भी नहीं है और सम्भवत: किसी अन्य उद्देश्य से पेश किया गया है। मुझे खेद है कि मैं इस शब्द को काम में लाया हूं परन्तु मुझे इसके लिये एक ऐसे आदमी की हास्यपूर्ण बात से इशारा मिला है जो पहले कांग्रेसी थे। वे केन्द्रीय धारा-सभा में मेरे सहयोगी हैं और उन्होंने कहा कि यह शायद इस उद्देश्य से पेश किया गया है कि यदि कभी वामपंथी प्रांतीय मंत्रिमंडल पर अधिकार पा जायें तो वे विश्रृङ्खल हो जायें। मैं कह चुका हूं कि यह केवल मजाक में कहा गया था।

मेरा सारा विरोध दो बातों के आधार पर है। पहले तो मैंने जितने विधान देखे उनमें से किसी में भी जिसमें मंत्रिमंडल धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी है। इस प्रकार का कोई भी आदेश नहीं पाया कि यदि गवर्नर यह समझे कि मंत्रिमंडल ने सभा का विश्वास खो दिया है तो गवर्नर शासन की बागडोर अपने हाथ में ले सकता है, मंत्रिमंडल को अलग कर सकता है और अन्य मन्त्रियों को रख सकता है। यदि वह समझे कि सभा ठीक काम नहीं कर रही है तो वह सभा को ही समाप्त कर सकता है, किन्तु यह विचित्र नवीनता ब्रिटिश सरकार ने भारत की विशेष दशाओं में धारा 93 लागू करने के लिये ही उत्पन्न की और वह अब भी जारी है। जैसा कि पंडित पंत बता चुके हैं, वे दशाएं भिन्न थीं; उस समय गवर्नर एक पक्ष का आदमी था। उसके कुछ ऐसे हित थे, जो मंत्रिमंडल के हितों के विरोध में थे और यह आवश्यक था कि उसको कुछ अधिकार प्राप्त हों। साधारण कानून अक्सर अलग रख दिये जाते हैं। विभिन्न तरीकों से विभिन्न सीमाओं तक वे अलग

रख दिये जाते हैं। उदाहरणार्थ, धारा 144 से आपस में मिलने-जुलने की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। यदि कोई गम्भीर आर्थिक संकट उपस्थित हो तो मुकदमें की अवधि निर्धारित करने के कानून स्थगित कर दिये जाते हैं। यदि देश की शांति गंभीर संकट में पड़ जाये तो फौजी कानून से कुछ काल के लिये फौजी शासन स्थापित हो जाता है। इसलिये कानूनों को स्थगित करने की अवधि अलग-अलग सूरतों में अलग-अलग हुआ करती है। इसके अतिरिक्त मेरी समझ में नहीं आता कि यह सर्वाधिकार सम्पन्न व्यक्ति, जिसे गवर्नर कहा गया है, प्रांत की सारी परिस्थिति को 14 ही दिन के थोड़े से समय में कैसे बदल देगा, जब कि मंत्रीगण वर्षों से काम करते रहने पर भी उसे सम्हालने में असमर्थ हों? वह कौन-सा ऐसा विशेष साधन या अधिकार प्रयोग में लायेगा जो मंत्रिमंडल को प्राप्त न होगा? मंत्रिमंडल के होते हुए भी वह एक आर्डिनेंस जारी कर सकता है। मंत्रियों की उपस्थिति में भी उनकी स्वीकृति से वह फौजी कानून को अमल में ला सकता है। लेकिन ऐसी कोई कार्यवाही न करके और सारा अधिकार अपने हाथ में लेकर वह संसार में केवल यह प्रकाशित करेगा कि अब मैंने शांतिकाल के उन दुष्टों को अलग कर दिया है जो अभी तक केवल रिक्त स्थानों की पूर्ति करते थे और उत्तेजना फैलाते थे। इस धारा का अर्थ निम्नलिखित शब्दों से प्रकट हो जाता है:

''प्रांत के शासन को अपने मंत्रियों की सलाह से चलाना सम्भव न हो।'' इसलिये इसका अर्थ वास्तव में यह है कि मंत्रियों के उभाड़ने से ही प्रांत की सुख-शांति के लिये खतरा उपस्थित हो गया है। उनको अलग करने से ही आप ऐसी अणु शक्ति उत्पन्न कर देने की आशा करते हैं जिससे शांति स्थापित हो जायेगी। किन्तु 14 दिन बाद क्या होगा? क्या वही लोग जो शांति को संकट में डालने के लिये उत्तरदायी समझे गये थे, वापस बुला लिये जायेंगे? ऐसी दशा में उनकी क्या प्रतिष्ठा रह जायेगी? वे किस मुंह से अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से अपनी आज्ञाओं का पालन करने के लिये कहेंगे जब कि वह कर्मचारी यह जानेंगे कि उनकी आज्ञाओं का उसी समय तक पालन करना है जब तक कि गवर्नर अपना विशेषाधिकार प्रयोग में न लाये? इस आशय का कोई भी आदेश नहीं है कि मंत्रियों को अलग करने का यह अधिकार बार-बार प्रयोग में न लाया जायेगा। एक बार वह उन्हें अलग कर देता है। दो सप्ताह बाद वह फिर विधान को प्रयोग में ले आता है परन्तु दूसरे ही दिन वह उसे फिर स्थगित कर देता है। इस घृणित चक्र का कोई अन्त ही नहीं है और न उस

पर कोई नियत्रंण ही है। वास्तव में जिस प्रांत में यह अधिकार प्रयोग में लाया जायेगा, वहां विधान की ऐसी दुर्गति हो जायेगी कि मेरे विचार से मंत्रियों की रक्षा करना आवश्यक हो जायेगा। आप जानते हैं कि मैं प्रबन्धकारिणी के अधिकार का समर्थक नहीं हूं। यदि संघ के अध्यक्ष स्वीकृति देंगे तो सम्भव है कि अन्त में स्वेच्छाचारी शासन स्थापित हो जाये। यदि संघ का अध्यक्ष यह समझता है कि किसी प्रांत में ऐसा मंत्रिमंडल स्थापित हो गया है जो संघ की प्रबन्धकारिणी को मान्य नहीं है तो वह मंत्रिमंडल काम नहीं करेगा और न वह काम कर ही सकता है। मैंने इस सम्बन्ध में संघ-विधान को भी इसलिये देखा कि अध्यक्ष को भी ऐसा अधिकार दिया गया है कि नहीं। मुझे खेद है कि संघ-विधान में इस प्रकार का कोई आदेश नहीं है। सम्भवतः जब वह पेश किया जायेगा तो इस आशय का एक संशोधन भी पेश कर दिया जायेगा जिससे अध्यक्ष को धारा 93 के उस शासन को चलाने का तानाशाही अधिकार मिल जायेगा जिसको भारतवर्ष में सभी वर्गों के लोग घृणा की दृष्टि से देखते रहे हैं। मेरे पास गवर्नर के लिये या मन्त्रियों के लिये अधिकारों का कोई चिट्ठा नहीं है। इस थोड़े से काल में जब कि विधान प्रयोग में रहा है, कई अवसरों पर मेरा मन्त्रियों से मतभेद रहा है। धारा 93 के आधीन जिस तरीके से शासन चलाया गया इससे भी मैं सहमत नहीं था। परन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि मन्त्रिमण्डल की प्रथा, चाहे उसमें कितने ही दोष क्यों न हों, एक प्रजातन्त्रात्मक प्रथा है और धारा 93 से स्वेच्छाचारी शासन को ही सहायता मिलती है और उसके फलस्वरूप किसी दिन ऐसी शासन-प्रणाली स्थापित हो सकती है जिसे बनाये रखना लोग पसन्द न करें। श्रीमान्, इस कारण मैं श्री मुंशी के प्रस्ताव का विरोध करता हूँ।

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रासः जनरल): अध्यक्ष महोदय, मुझसे पहले बोलने वाले दो वक्ताओं ने जो विचार धारा-सभा के सामने रखे हैं, उसका मैं घोर विरोध करता हूं। मेरे लिए यह समझना बहुत ही कठिन है कि मेरे ही एक नेता ने जिन्हें मंत्रिमंडलों को चलाने का अनुभव है, बर्मा की हाल की घटनाओं की कैसे उपेक्षा की है? हम इसका स्मरण तो करें कि वहां क्या हुआ! यदि हम यह मानें कि ऐसी ही दुर्घटना भारत में हो जाये और प्रधान मंत्री के साथ आधे दर्जन मंत्री समाप्त कर दिये जायें तो उस प्रांत में संघ के अध्यक्ष को फौरन ही सूचना देने और सहायता प्राप्त करने के लिए कौन रह जायेगा? संघ के मंत्रियों में से किसी मंत्री या संघ

के अध्यक्ष के लिये यह सम्भव न होगा कि वह खास तौर से एक हवाई जहाज लेकर मद्रास तक जाये या लखनऊ तक भी जाये और वहां जाकर संघीय या प्रांतीय सेना की मदद से असहाय लोगों की सहायता करे। यह बड़ी विचित्र बात है कि अनुभवी लोग यहां आकर ऐसे विचार प्रकट करें, जो हमारे यहां की वास्तविक घटनाओं के विरोध में हो।

श्रीमान्, जरा इस पर भी विचार कीजिये कि यह सम्भव है कि कांग्रेस-दल, जिसका विभिन्न प्रांतीय धारा-सभाओं में बहुमत है, जैसा वह आजकल है वैसा न रहे और धारा-सभाओं में कई प्रतिद्वन्द्वी दल बन जायें और कुछ दलों और समूहों को मिलाकर केवल संयुक्त-मंत्रिमंडल स्थापित करना सम्भव हो तथा प्रधान-मंत्री एक नाम-मात्र का अधिकारी रह जाये, तो ऐसी अवस्था में क्या हम यह समझें कि पंडित पंत जैसा प्रतिष्ठित व्यक्ति एकाएक उपस्थित होकर प्रधान-मंत्री का सारा कार्य अपने हाथ में लेगा और गवर्नर के पास जाकर यह कहेगा: ''आप हस्तक्षेप न कीजिये। मैं अपनी रक्षा स्वयं करने में समर्थ हूँ।'' ऐसी दशा में श्रीमान्, एक संयुक्त मंत्रिमंडल का अध्यक्ष होते हुए पंडित पंत के समान प्रतिष्ठित आदमी भी अपनी रक्षा स्वयं करने में समर्थ न होगा। ऐसे अवसर आयेंगे जब स्वयं प्रधान-मंत्री या कुछ मंत्री अवश्य ही गवर्नर के पास जायेंगे और उससे प्रार्थना करेंगे कि वह अपने विशेष अधिकार को प्रयोग में लाये ताकि देश के बदमाशों, गुंडों और संगठित डाकुओं से उनकी रक्षा हो सके। भले ही उनको अपने मंत्रिमंडल से सहायता क्यों न मिल सकती हो।

इस प्रकार का कोई सुरक्षित अधिकार गवर्नर को देना आवश्यक है। लेकिन यह गवर्नर कौन है? एक दूसरे मित्र आकर हमसे कहते हैं, ''उसे एक स्वेच्छाचारी शासक न बनाइये।'' स्वेच्छाचारी शासन से उनका क्या मतलब है? क्या उनका मतलब यह है कि जो गवर्नर प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुना जाये वह एक स्वेच्छाचारी शासक समझा जाये? जी हां, वह भी एक स्वेच्छाचारी शासक हो सकता है। बहुत से लोग जो प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुने गये, स्वेच्छाचारी शासक हो गये। यह बिलकुल सच है। इसी कारण हमने धारा-सभा को यह अधिकार दिया है कि यदि गवर्नर अपनी अधिकार-सीमा के बाहर जाये तो वह न्यायाधीशों के सन्मुख उस पर दोषारोपण करे। यदि वह दुर्व्यवहार करे तो धारा-सभा को ही उसके विरुद्ध कार्यवाही करने के लिये सुरक्षित अधिकार दिया गया है। फिर क्या कारण है कि हमें यह भय हो कि वह एक स्वेच्छाचारी शासक हो जायेगा या अपने मंत्रियों से ऐसा बर्ताव करेगा जैसा वह अपने चपरासियों के साथ करता हो?

[प्रो. एन.जी. रंगा]

इसके अतिरिक्त पंडित पंत ने एक दूसरी बात कही है। उन्होंने पूछा है, ''इस गवर्नर को किसी प्रकार का अनुभव कैसे होगा? उसके मंत्री दिन प्रतिदिन का शासन-प्रबन्ध करेंगे और दायित्व के अवसरों पर निर्णय करने के आदी हो जायेंगे परन्तु यह व्यक्ति एक पुतले की तरह बैठा रहेगा और उसे कुछ भी ज्ञान न होगा। जब कोई गंभीर संकट उपस्थित हो तो हमसे उसकी सहायता लेने को कहा गया है। उसके लिये ठीक निर्णय करना कैसे सम्भव होगा?'' क्या मैं उन्हें स्मरण करा सकता हूं कि प्रांत के शक्तिशाली प्रधान-मंत्री होने के नाते यह उनका कर्तव्य है, और यह उनके मंत्रियों का कर्त्तव्य है कि वे गवर्नर को दिन प्रतिदिन के शासन-प्रबन्ध के सम्पर्क में रखें। यह गवर्नर का कर्तव्य होगा कि वह अनुभव प्राप्त करे और यदि वह अपने मंत्रियों और पंडित गोविन्दवल्लभ पंत जैसे प्रधान मंत्री की सलाह से अनुभव प्राप्त नहीं करता है, तो वह निरा मूर्ख ही होगा। इसलिये श्रीमान्, गवर्नर एक अनुभवी व्यक्ति होगा। यदि उसे प्रौढ़ मताधिकारियों को प्रभावित करके अपने को पहली बार निर्वाचित कराना है तो उसे एक अनुभवी व्यक्ति होना है, लोगों का विश्वासभाजन होना है और अपने उत्तरदायित्व को समझना है। इसके अतिरिक्त चुनाव के बाद प्रधान-मंत्री ही नहीं बल्कि उसके मंत्री भी उसे बराबर सलाह देते रहेंगे। उसे मंत्रिमंडलों की बैठकों में उपस्थित होने का अधिकार है और उसे सभी मंत्रियों द्वारा सामूहिक रूप से सलाह देते रहना है। इस अनुभव के बल पर वह ठीक समय में यह निर्णय कर सकेगा कि वास्तव में संकट उपस्थित है। यदि वास्तव में संकट उपस्थित हो तो उसे दूर करने के लिये उसको आकस्मिक परिस्थिति के आवश्यक अधिकार भी प्राप्त होने चाहियें।

हमसे एक दूसरा प्रश्न भी पूछा गया है। ''इस गवर्नर के क्या अधिकार हैं? अपने अधीन किसको वह आज्ञा देगा?'' अभी मेरे मित्र मि. हुसैन इमाम ने हमसे कहा कि यदि आप उसे ये सब अधिकार दें तो सिविल सर्विसों के लोग आज्ञा प्राप्त करने के लिये मंत्रियों की ओर नहीं, बल्कि उसी की ओर देखेंगे। वास्तव में यही होगा। सिविल सर्विसों के लोग मंत्रिमंडल और गवर्नर दोनों की आज्ञा का पालन करना सीखेंगे। गवर्नर हमेशा सारे मंत्रिमंडल का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार सिविल सर्विसों के लोग और सुरक्षित सेना तथा पुलिस सेना के लोग भी गवर्नर की भी आज्ञा का पालन करना सीखेंगे। कुछ काल के लिये मंत्री शक्तिहीन या अनुत्तरदायी हो सकते हैं। हमारे मित्र हमसे पूछते हैं कि

ऐसी अवस्था में इन मंत्रियों का क्या होगा? यदि किसी संकटकाल में वे स्थिति को सम्हालने में असमर्थ हों और इसलिये गवर्नर को विशेष परिस्थिति के अधिकार प्रयोग में लाने दें तो इन अधिकारों की अवधि समाप्त होने पर यदि वे अपनी ही धारासभा के सदस्यों द्वारा बिल्कुल निकम्मे ठहराये जायें तो उन्हें दूसरे मंत्रियों के लिये स्थान रिक्त करने होंगे। लेकिन यदि धारा-सभा का उन पर विश्वास हो और वे शासन-प्रबन्ध चला सकें तो उनको चलाने दिया जाये। इसके विपरीत यदि धारा-सभा और मंत्री इस नतीजे पर पहुंचें कि गवर्नर ने अपने अधिकारों का दुरुपयोग किया है और एक संकट उपस्थित कर दिया है तो यह उनके अधिकार में होगा कि वे न्यायाधीशों के सम्मुख उस पर दोषारोपण करने का प्रस्ताव करें। जब आपने ऐसी सुरक्षा की व्यवस्था कर दी है तो मेरी समझ में नहीं आता कि मेरे नेता पंडित गोविन्दवल्लभ पंत यहां आकर किस प्रकार इस सुन्दर संशोधन के विरुद्ध असंगत तर्क उपस्थित करते हैं।

श्रीमान्, मैं एक ही बात और कहकर समाप्त कर दूंगा। हमें स्मरण रखना चाहिये कि यह गवर्नर प्रौढ़ मतगणना के आधार पर चुना जायेगा। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि उसे बराबर पांच वर्ष तक उस पद पर रहना है जब कि उसका मंत्रिमंडल तीन चार या छः महीने में ही समाप्त हो जाये। हमें मद्रास का हाल का अनुभव न भूलना चाहिये। इस बराबर रहने वाले व्यक्ति को हमें जितने अधिकार हो सकें, दे देना चाहिये ताकि जनसाधारण अपनी नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिये शासन में कुछ स्थिरता, कुछ तारतम्य और कुछ सुरक्षा देख सके।

अन्त में श्रीमान्, मैं यह कहना चाहता हूं कि इस देश के एक वामपंथी की हैसियत से मैं यहां बोल रहा हूं। अपने राजनैतिक जीवन के आरम्भ से ही मैं एक वामपंथी रहा हूं। मुझे निस्संदेह पंडित गोविन्दवल्लभ पंत के समान मंत्रिपद का अनुभव नहीं है और सम्भव है कि इसी कारण मैं आज सभी वामपंथियों के नाम पर बोल रहा हूँ। सभी वामपंथी यह समझेंगे कि हाल में बर्मा में जिस प्रकार का बलवा और संगठित गुँडापन हुआ और जिसे हम अपने देश में नहीं होने देना चाहते हैं, इसे रोकने के लिये यह एक सुरक्षा होगी।

*__श्री शंकर दत्तात्रेय देव__ (बम्बई : जनरल): श्रीमान्, मैं बहस बन्द करने का प्रस्ताव करता हूं।

***अध्यक्षः** बहस बन्द करने का प्रस्ताव पेश हो चुका है। क्या सभा इसके पक्ष में है?

***माननीय सदस्यः** जी, हां।

***अध्यक्षः** प्रस्तावक अब जवाब देंगे।

***श्री एम.एस अणेः** श्री मुंशी अपने संशोधन पर नहीं बोले हैं।

***श्री के.एम. मुंशी** (बम्बईः जनरल)**:** क्या मैं बोल सकता हूँ।

***माननीय श्री जयपाल सिंह** (बिहारः जनरल)**:** श्रीमान्, मुझे एक व्यवस्था-सम्बन्धी प्रश्न पूछना है। पिछले दिन अपना संशोधन पेश करते समय श्री मुंशी ने हमसे कहा था कि वे आज अपने विचार प्रकट करेंगे और श्री गुप्ते ने भी ऐसा ही कहा था। मेरे विचार से उन्हें बोलने का अवसर मिलना चाहिये।

***एक माननीय सदस्यः** यदि वे नहीं बोले हैं, तो इसमें हमारा कोई दोष नहीं है।

***सेठ गोविन्ददासः** (मध्य प्रान्त और बरारः जनरल)**:** श्रीमान्, मुझे एक व्यवस्था सम्बन्धी बात करनी है। सभा ने बहस बन्द करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है और अब केवल प्रस्तावक महोदय बोल सकते हैं।

***श्री के.एम. मुंशीः** मैं बोलने के लिये बहुत इच्छुक नहीं हूँ।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से सेठ गोविन्ददास ने ठीक ही व्यवस्था-सम्बन्धी बात कही है। प्रस्तावक अब बोलेंगे।

***माननीय सरदार वल्लभभाई पटेलः** श्रीमान्, मैंने जो प्रस्ताव पेश किया है उसमें वास्तव में दो संशोधन पेश किये गये हैं। एक पंडित हृदयनाथ कुंजरू का संशोधन है, और दूसरा श्री गुप्ते का है जिन्होंने श्री मुंशी का संशोधन स्वीकार कर लिया है। इन दोनों का उद्देश्य एक ही है। शुरू में मैं कह चुका हूं कि यह एक विवादग्रस्त विषय है। दो दृष्टिकोण हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार मंत्रिमंडल के अधिकारों में हस्तक्षेप करने से असंतोष ही होगा, उससे अवश्य कठिनाइयां उत्पन्न होंगी और किसी प्रजातंत्रात्मक विधान में ऐसी बात शोभा नहीं पाती। इसलिये मैं इस आपत्ति को, जिसे हमारे प्रतिष्ठित प्रधान मंत्री पंडित गोविन्दवल्लभ पंत ने बड़े जोरदार शब्दों में कहा है, अच्छी प्रकार समझता हूं।

इसके विपरीत अन्य प्रधान मंत्रियों और ऐसे लोगों ने अपना मत प्रकट किया है, जिनको विधान को कार्यरूप में लाने का अनुभव है। उनका भी उतना ही निश्चित मत है कि यदि देश की वर्तमान परिस्थिति में इस प्रकार के आकस्मिक परिस्थिति के अधिकार की व्यवस्था न की जाये तो यह एक खतरनाक बात होगी। या जैसा कि श्री गुप्ते ने अपने संशोधन में कल्पना की है यानी जब शासन व व्यवस्था बिल्कुल छिन्न-भिन्न हो जाये और जब दुर्भाग्य से कोई ऐसी घटना घटित हो जाये, जैसी कि हाल में बर्मा में हुई थी या इसी प्रकार की कोई विपत्ति का सामना करना पड़े या ऐसी घटनाएं हों जैसी कि आजकल हमारे ही देश के कुछ प्रांतों में हो रही हैं, तो प्रांत के शासकों के लिये इतना ही काफी नहीं है कि वे केन्द्र को सूचित कर दें बल्कि कुछ अधिक प्रभाव-पूर्ण व्यवस्था होनी चाहिये। हमारे पास कोई अन्य साधन भी होने चाहियें ताकि शासन व व्यवस्था का कार्य एक क्षण की भी प्रतीक्षा किये बिना चल सके, वरना नतीजा खतरनाक होने की सम्भावना है।

ये दो दृष्टिकोण हैं और जैसा कि पंडित पंत ने कहा है उनके पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है, परन्तु उनके विरोध में भी बहुत कुछ कहा जा सकता है। साधारण मनुष्यों को बहुमत को और ऐसे लोगों के मत को स्वीकार करना पड़ता है, जिनको अनुभव हो। यहां जो मतप्रदर्शन हुआ है उससे यही प्रकट होता है कि संशोधन में जैसी व्यवस्था प्रस्तावित की गई है, उस प्रकार का कोई आदेश हमें रखना ही चाहिये।

मैं सभा का अधिक समय नहीं लेना चाहता क्योंकि बहुत वाद-विवाद हो चुका है और इस प्रश्न के सभी अंगों पर पूर्ण रूप से विचार हो चुका है। जिन्होंने इसके पक्ष में तर्क दिया है, और जिन्होंने इसके विरोध में तर्क दिया है उन सबके मस्तिष्क में केवल यही विचार था कि देश के हितार्थ विधान में कैसी व्यवस्था हो। उनके दिमाग में केवल यही विचार था। हम सबको अनुभव से शिक्षा ग्रहण करनी है। हमने कभी भी यह नहीं कहा कि हम इस विधान को अधिक सुन्दर नहीं बना सकते, या इसमें परिवर्तन नहीं कर सकते। यदि हम कुछ कठिनाइयां अनुभव करें तो हम ऐसा कर सकते हैं। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं कि महत्व तो इसका है कि हम किस भावना से इस विधान को कार्यरूप में लाते हैं। इसकी कल्पना करने के लिये कोई भी कारण नहीं है कि हमारे अध्यक्ष या गवर्नरों का जो सार्वभौम प्रौढ़

[माननीय सरदार वल्लभभाई पटेल]

मतगणना के आधार पर चुने जायेंगे, मंत्रियों से झगड़ा होता रहेगा। यदि दुर्भाग्य से कभी ऐसा हुआ भी तो हमें इस विषय को फिर उठाने का अधिकार है। हमें इसकी स्वतंत्रता है। अपने विधान को सुधारने के लिये हमें ब्रिटिश पार्लियामेंट या किसी बाहर के अधिकारी के पास जाने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये मैं श्री गुप्ते का संशोधन, जैसा कि वह श्री मुंशी के संशोधन द्वारा संशोधित हुआ है, स्वीकार करता हूं।

***अध्यक्ष:** मैं पहले पंडित कुंजरू के संशोधन को सभा के सामने रखूंगा। वह यह है कि खण्ड 15 की जगह निम्नलिखित रखा जाये:

''जब कभी गवर्नर को यह विश्वास हो जाये कि प्रांत की सुख-शांति गंभीर संकट में पड़ने का भय है तो वह अपने विवेक से राज्य-संघ के अध्यक्ष को रिपोर्ट दे सकता है।''

संशोधन गिर गया।

अब मैं श्री मुंशी के संशोधन को आपके सामने रखूंगा जो कि श्री गुप्ते का भी संशोधन है, क्योंकि श्री गुप्ते ने श्री मुंशी का संशोधन स्वीकार कर लिया है।

वह यह है कि संशोधन की सूचना की पूरक सूची में श्री बी.एम. गुप्ते के संशोधन नं. 4 ता. 16 जुलाई सन् 1947 ई. की जगह निम्नलिखित रखा जाये:

''(1) जब किसी प्रांत के गवर्नरों को अपने विवेक से यह विश्वास हो जाये कि एक ऐसी गंभीर स्थिति हो गई है कि प्रांत की सुख-शांति संकट में पड़ गई है और यह कि धारा 9 के आदेशों के अनुसार अपने मंत्रियों की सलाह से प्रांत का शासन-प्रबन्ध करना सम्भव नहीं है तो वह घोषणा करके सरकार के सभी या कोई कार्य या किसी प्रांतीय सभा या अधिकारी द्वारा प्रयोग में आने वाले या उसको दिये हुए सभी या कोई अधिकार अपने हाथ में ले सकता है; और ऐसी किसी घोषणा में ऐसे आकस्मिक या अप्रत्यक्ष आदेश हो सकते हैं, जिन्हें वह घोषणा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये आवश्यक या वांछनीय समझे जिनमें किसी प्रांतीय सभा या अधिकारी से सम्बन्धित इस कानून के आदेशों को पूर्णत: या अंशत: स्थगित करने के आदेश भी सम्मिलित हैं:

परन्तु शर्त यह है कि इस उपधारा के किसी आदेश से गवर्नर को किसी हाईकोर्ट द्वारा प्रयोग में आने वाले या उसको दिये हुए कोई अधिकार अपने हाथ में लेने या हाईकोर्टों से सम्बन्धित इस कानून के आदेशों को पूर्णतः या अंशतः स्थगित करने का अधिकार प्राप्त न होगा।

(2) इस घोषणा की सूचना गवर्नर तुरंत ही संघ के अध्यक्ष को देगा, जो अपने आकस्मिक परिस्थिति के अधिकारों को प्रयोग में लाते हुए, जो भी कार्यवाही उचित समझे, करेगा।

(3) यह घोषणा दो सप्ताह समाप्त होने पर प्रयोग में न रहेगी, यदि गवर्नर स्वयं या संघ का अध्यक्ष इसके पहले न उठा ले।''

संशोधन स्वीकार कर लिया गया।

***अध्यक्षः** संशोधित प्रस्ताव अब वास्तविक प्रस्ताव हो जाता है और अब मैं उस पर वोट लेता हूं।

खण्ड 15 संशोधित रूप में स्वीकार कर लिया गया।

संघीय विधान सम्बन्धी रिपोर्ट

***अध्यक्षः** अब हम संघ-विधान सम्बन्धी रिपोर्ट पर विचार करेंगे। भाग 4 के खण्ड 1 को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने पेश किया था। अब हमें उस खण्ड में जो संशोधन पेश किये गये हैं उन पर विचार करना है। मेरे पास कई ऐसे संशोधन हैं जिनकी सूचना दे दी गई थी।

श्री गोकुलभाई भट्ट (पूर्वी राजपूताना राज्य समूह): सभापति जी, यूनियन पावर कमेटी के लिये संशोधन भेजने का जो समय दिया गया था वह गुरुवार तक का था लेकिन अब आपने कार्यक्रम निश्चित कर दिया है तो इस सम्बन्ध में आप यूनियन पावर कमेटी के लिये संशोधन देने की मियाद बढ़ाने की कृपा करेंगे।

अध्यक्षः मैंने कल कह दिया था कि जो वक्त मैंने दिया था वह अब नहीं रहा।

*__प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना__ (संयुक्त प्रान्तः जनरल): श्रीमान्, संघ-विधान के स्मृति-पत्र के भाग 3 में कहा गया है कि:

''यहां विधान-परिषद् द्वारा स्वीकार किये हुए मौलिक अधिकारों तथा राज्य की नीति के सिद्धान्तों की गणना कीजिये।''

परन्तु श्रीमान, हममें से कुछ लोगों ने इन मौलिक अधिकारों और राज्य की नीति के सिद्धांतों में संशोधन पेश करने की सूचना दी है। विशेषतया मैंने यह संशोधन पेश किया है कि मौलिक अधिकारों में इस आशय का एक नया खण्ड जोड़ दिया जाये कि: ''भारतवर्ष में गोवध का कानून द्वारा निषेध होगा।'' मैं यह जानना चाहता हूं कि मुझे यह संशोधन पेश करने का अवसर कब मिलेगा?

माननीय सर एन. गोपालस्वामी आयंगर (मद्रास : जनरल): मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित खण्ड पर सभा में बहस हुई थी और जहां तक उनको विधान के मसविदा में स्थान देने का सम्बन्ध है, ये खण्ड पहले एक अधिवेशन में स्वीकार हो गये थे। जो सदस्य महोदय अभी बोले हैं उन्होंने पूछा है कि उनको तथा अन्य सदस्यों को जिन्होंने मौलिक अधिकारों के खण्डों में संशोधनों की सूचना दी है, उन्हें पेश करने का अवसर कब मिलेगा ताकि सभा उस पर विचार कर सके। मेरे विचार से ऐसे सभी संशोधनों को पेश करने के लिये उचित अवसर उस समय होगा जब कि सभा के अन्तिम अधिवेशन में मौलिक अधिकारों को सम्मिलित करके विधान के मसविदे पर विचार होगा। मेरे विचार से पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्थिति को बिलकुल स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने कहा है कि जब मसविदा सभा में पेश किया जायेगा तो सदस्यों को मसविदा के शब्दों में ही नहीं बल्कि उसके आशय के सम्बन्ध में भी संशोधन पेश करने की स्वतंत्रता होगी।

*__अध्यक्ष:__ मेरे विचार से इससे स्थिति बिल्कुल स्पष्ट हो गई है। उसे पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी स्पष्ट कर दिया था। मौलिक अधिकारों से सम्बन्धित विधान के समविदा में अन्तिम अधिवेशन में संशोधन पेश किये जा संकते हैं।

*__एक माननीय सदस्य:__ हमने मौलिक अधिकारों के सभी खंडों को स्वीकार नहीं किया है।

*__अध्यक्ष:__ जब वे पेश होंगे तो उस समय हम उन पर विचार करेंगे।

कार्यक्रम में दिया हुआ संशोधन नं. 61–श्री विजयवर्गीय।

श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय (ग्वालियर राज्य): श्रीमान् अध्यक्ष महोदय, हालांकि बाद में जो विचार विनिमय अपने अमेंडमेंट देने के बाद हुआ है उसके अनुसार अपने अमेंडमेंट को मैं पेश नहीं करना चाहता। लेकिन कुछ बातें ऐसी हैं जिनकी तरफ आपका ध्यान दिलाना जरूरी समझता हूं। मेरे ख्याल से यह जो सैक्शन ''हैड आफ दी फेडरेशन'' के चुनाव के बारे में है, वह यह है कि वह किस तरह से चुना जाये और इसमें रियासतों के जो युनिट्स हैं, वह सब चुनाव में हिस्सा लें। अब चूंकि रियासतों के अन्दर धारा-सभायें बहुत ही नकली और बहुत ही रद्दी किस्म की हैं, वे इस चुनाव में असर डालेंगी। इसलिये मेरा ख्याल था कि मैं यह अमेंडमेंट पेश करूं। मैंने इसी ख्याल से अपना अमेंडमेंट पेश किया था कि चुनाव में सबको मौका दिया जाये और डाइरेक्ट एडल्ट फ्रैंचाइज के ढंग पर चुनाव हो लेकिन बाद के विचार विनिमय के अनुसार मैं इसको प्रेस नहीं करता और सिर्फ यह कहना चाहता हूं कि एक तरफ तो प्रान्तों के एलेक्टर वोट देंगे और दूसरी तरफ रियासतों की जो हालत है और जैसी रद्दी धारा-सभाएं हैं, उनसे आये हुए रियासतों के एलेक्टर प्रेसीडेंट को चुनेंगे। वह एक बड़ी अजीब बात होगी। रियासतों में कई तरह की नकली धारा-सभाएं हैं। उनमें नोमीनेटेड लोग हैं, जागीरदार हैं और स्पेशल इन्ट्रैस्ट्स के लोग हैं। जब तक हमारी रियासतों में डिमोक्रेसी नहीं होती तब तक फेडरेशन के लिये बड़ा खतरा है जो रियासतों से चुन कर आयेंगे, वह प्रेसीडेंट के इलेक्शन में हिस्सा लेंगे। कई खतरे हो सकते हैं। इसलिये मैं मुनासिब समझता हूं कि इस बात की तरफ उचित ध्यान रखा जाये कि रियासतों से जो एलेक्टर हों वह ठीक तरह से चुने जायें और जो जागीरदार, नोमीनेटेड या दूसरे स्पेशल इन्टरेस्ट के एलीमेंट हों, वह उसमें वोट न दे सकें। ऐसे जरूरी सेफगार्ड मुनासिब ढंग से रखे जायें।

फेडरेशन हमारे देश में हो रहा है लेकिन हमको मालूम नहीं है कि सारी रियासतें उसमें शामिल हो रही हैं या नहीं। जो शामिल होती हैं उनका रूख कैसा रहेगा, वह किस तरह से असर डालेंगी, यह भी नहीं मालूम है। मैं रियासतों की जनता की तरफ से आया हूं और मैं समझता हूं कि जो खतरा है उसके लिये सैफगार्ड किया जाना जरूरी है। यह बिलकुल सच्चा खतरा है। जब फेडरेशन के प्रेसीडेंट का इलैक्शन होगा तो जो रियासतों के एलैक्टेड मेम्बर होंगे, वह बड़ा असर डालेंगे। यहां हमारे कई एक रियासती मिनिस्टर साहिबान बहुत से अमेंडमेंट ला रहे हैं। जो मौजूदा मसविदा है, जो मौजूदा ड्राफ्ट है इसमें और भी

[श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय]

अधिक राजाओं के हक में अमेंडमेंट करना चाहते हैं। यह प्रजा के हक में ठीक नहीं है। मैं तो चाहता हूँ कि अगर प्रेसीडेंट का इलैक्शन डाइरेक्ट होता तो हर रियासत के लोगों को हर छोटे से छोटे आदमी को सैटीसफैक्शन होता कि वह प्रेसीडेंट के इलैक्शन में वोट देने का हकदार है। खैर, यह नहीं रहा है। कई कारणों से मैं प्रेस करना नहीं चाहता। लेकिन मैं यह बतलाना चाहता हूं कि रियासतों की जो हालत है उसको देखते हुए अमेंडमेंट जो मिनिस्टर साहब ला रहे हैं, उनके बाबत काफी होशियारी रखी जानी चाहिये। मैं अपना अमेंडमेंट वापस लेना चाहता हूं।

(श्री ए.के. घोष और श्री एस. निजलिंगप्पा ने अपने संशोधन पेश नहीं किये।)

***श्री एच.वी. कामत** (मध्य प्रान्त और बरार: जनरल): मुझे बताया गया है कि 'प्रेसीडेंट' शब्द का हिन्दी पर्यायवाची उस समय निश्चित किया जायेगा जब हिन्दी भाषा में विधान का मसविदा सभा में पेश किया जायेगा और उस पर बहस होगी। इसलिये इस अवसर पर मैं इस संशोधन (नं. 64) को पेश नहीं करना चाहता।

(श्री बालकृष्ण शर्मा ने अपना संशोधन नं. 65 पेश नहीं किया।)

श्री गोकुलभाई भट्ट: सभापति जी, मैं जो संशोधन रखना चाहता था वह राष्ट्रपति के नाम के बारे में था। 'राष्ट्रपति' या 'नेता' या 'कर्णधार' यह शब्द रखना चाहिये। लेकिन मुझे यह जानकारी मिली है कि इन नामों के बारे में सही नाम क्या होना चाहिये इसके मुतल्लिक एक कमेटी बैठेगी। उसके बाद इसका फैसला होगा। इस आशा से मैं यह संशोधन वापस लेना चाहता हूं।

(सर्वश्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर, मोहनलाल सक्सेना, बी.एम. गुप्ते और यदुवंशसहाय ने अपने संशोधन नं. 67, 68, 69 और 70 पेश नहीं किये।)

***श्री के. सन्तानम्:** पंडित नेहरू ने यह राय दी थी कि हम भाग 4 से शुरू कर सकते हैं।

***अध्यक्ष:** जी हां, हमने भाग 4 उठा लिया है और हम खण्ड 1 पर विचार कर रहे हैं।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रासः जनरल)**:** हम अल्पसंख्यकों की रिपोर्ट की प्रतीक्षा कर रहे हैं और इसलिये मैं इस समय इस संशोधन नं 71 को पेश नहीं करना चाहता।

***श्री टी. चनय्या** (मैसूर राज्य)**:** अध्यक्ष महोदय, मैं निम्नलिखित संशोधन पेश करता हूं**:**

खण्ड 1 के उपखण्ड (1) में 'चुना जायेगा' शब्दों के बाद ''पारी-पारी से उत्तरी भारत से या दक्षिणी भारत से'' शब्द जोड़ दिये जायें। श्रीमान् संघ के अध्यक्ष की जगह के लिये इस निर्वाचित प्रणाली का सुझाव मैंने इन कारणों से दिया है। संघ के अध्यक्ष का चुनाव पारी-पारी से उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत द्वारा होने से लोगों का उचित प्रतिनिधितव होगा, और उनको सन्तोष हो जायेगा क्योंकि भौगोलिक दृष्टि से वे स्पष्टतः दो भागों में अर्थात् उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत में विभाजित हैं। भारत के इन भागों के लोगों की अपनी-अपनी संस्कृति, भाषाएं और विचारधाराएं हैं, जो अपने-अपने देशों की दशाओं के अनुरूप ही हैं। सबसे विशेष बात श्रीमान् यह है कि लोगों में मनुष्य मात्र के भ्रातृभाव का अभाव है और कई कारणों से प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अपनी ही जाति का प्रेम है और वे दूसरों के हितों और अधिकारों को ध्यान में नहीं रखते। ऐसे लोग इसीके लिये संघर्ष करते रहेंगे कि उनका आदमी संघ का अध्यक्ष चुना जाये और उनको भ्रातृभाव का बिल्कुल भी ध्यान न रहेगा।

इसके अतिरिक्त श्रीमान् अधिकतर लोगों में हमारा आदमी, हमारा घर, हमारा राज्य या हमारे प्रान्त का ही भाव प्रबल रहता है और वे पूछते हैं कि राष्ट्रपति उत्तरी भारत का निवासी है या दक्षिणी भारत का निवासी, इत्यादि। इसलिये श्रीमान् हम देखते हैं कि विभिन्न परिस्थितियों में लोगों की विचारधारा क्या होती है और उदारता का रूप केवल स्वहित साधन हो जाता है।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान् मुझे एक व्यवस्था सम्बन्धी आपत्ति करनी है। क्या कोई माननीय सदस्य लिखित भाषण को पढ़ सकता है?

***श्री टी. चनय्याः** श्रीमान्, हमें उस स्थिति का भी विचार करना चाहिये जब भारत में कोई बहुसंख्यक दल होगा और उसका ही बोलबाला होगा। इस प्रकार का संगठन अपने ही आदमी को राष्ट्रपति की जगह के लिये खड़ा करने का प्रयत्न करता है और दूसरे छोटे संगठनों को इसका अवसर नहीं देता है।

[श्री टी. चनय्या]

यदि कोई छोटा संगठन अपनी भी तकदीर आजमाना चाहेगा तो बड़े संगठन के मस्तिष्क में यह भाव उत्पन्न होगा कि इस कठिनाई को शीघ्रातिशीघ्र दूर कर देना चाहिये।

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, भारतवर्ष में असंख्य वर्णों का प्रश्न है। एक जाति दूसरी जाति पर अपना अधिकार जमा लेने के लिये संघर्ष करती है और प्रत्येक अवस्था में प्रत्येक जाति हर एक सरकार के शासन-प्रबन्ध में शक्ति व प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहती है; यह स्वाभाविक ही है।

इन सब बातों के अलावा यदि दलित जातियों और मुसलमानों जैसे अल्पसंख्यकों के अधिकारों की उपेक्षा की गई या देश के शासन-प्रबन्ध में उनकी जनसंख्या की ओर यथेष्ट ध्यान न दिया गया या इस पर बिल्कुल विचार न किया गया कि राष्ट्रपति के पद के लिये उनका भी अधिकार है, तो उनमें बहुत असंतोष फैल जायेगा।

जिस प्रकार भारत के लोगों में जाति-प्रेम है उसी प्रकार हम देखते हैं कि उत्तर भारत में उत्तरी-भारत का कर्मचारी दक्षिणी-भारत के कर्मचारी को नीची निगाह से देखता है और यही दशा दक्षिण भारत में भी है। इसलिये श्रीमान् हम देखते है कि देश के शासन-प्रबन्ध में किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त करने के लिये हममें से प्रत्येक व्यक्ति संघर्ष कर रहा है। जब कई लोग शक्ति प्राप्त कर लेते हैं तो वे अन्य लोगों के हितों की उपेक्षा करते हैं और शक्ति प्राप्त करने की दौड़ में साधारण लोग उन प्रजातंत्रात्मक सिद्धांतों से भी हाथ धो बैठते हैं, जिनको प्राप्त करने और जिनका उपभोग करने के लिये वे प्रयत्नशील रहे हैं।

इसलिये भारतीयों के बीच सद्भाव उत्पन्न करने और राज्यसंघ के अध्यक्ष का चुनाव न्यायोचित रूप से करने के लिये यह परम आवश्यक है कि संघ के अध्यक्ष का चुनाव पारी-पारी से उत्तरी-भारत या दक्षिणी-भारत से हो।

***श्री नजीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल: मुस्लिम): श्रीमान् मैं यह पेश करता हूं कि खण्ड 1 के उपखण्ड (1) में "जैसे नीचे व्यवस्था की गई है" शब्दों की जगह "नीचे दिये हुये तरीके से" शब्द रख दिये जायें। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि यह संशोधन केवल मसविदा ठीक करने के लिये पेश किया

गया है। वही बात दूसरे शब्दों में कह दी गई है। इन थोड़े से शब्दों के साथ मैं अपना संशोधन पेश करता हूं।

(संशोधन नं. 74 से 84 तक पेश नहीं किये गये।)

***रायबहादुर श्यामनन्दन सहाय** (बिहार: जनरल): आपकी अनुमति से मैं यह संशोधन पेश करना चाहता हूं कि खण्ड 1 के उपखण्ड (2) के पैराग्राफ (ख) में से ''या जहां व्यवस्थापिका की दो सभायें हों तो नीचे की सभा के सदस्य'' शब्द निकाल दिये जायें।

श्रीमान्, खण्ड 1 राष्ट्रपति के निर्वाचन की प्रणाली निर्धारित करता है। उसमें कहा गया है कि उनका चुनाव एक निर्वाचक-मण्डल करेगा जिसमें (क) संघीय पार्लियामेंट की दोनों सभाओं के सदस्य और (ख) सभी प्रदेशों की व्यवस्थापिकाओं के सदस्य और जहां व्यवस्थापिका की दो सभाएं हों तो नीचे की सभा के सदस्य होंगे। श्रीमान्, इससे यह प्रकट होता है कि ऊपर की सभा के सदस्यों को राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने से वंचित किया जा रहा है। इस सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि चूंकि इस सभा ने यह निर्णय कर लिया है कि प्रान्तों को दूसरी सभा स्थापित करने की स्वतंत्रता है, इसलिये यह अच्छा नहीं मालूम देता कि हम ऐसी ऊपर की सभाओं के सदस्यों को, जो निर्वाचित सदस्य होंगे, राष्ट्रपति के चुनाव में भाग न लेने दें। वास्तव में यदि ऊपर की सभाओं के सदस्य इसके भी योग्य न समझें जायें कि वे राष्ट्रपति के चुनाव में भाग ले सकते हैं तो ऊपर की सभाओं को रखने की ही क्या जरूरत है? आपका, इस सभा का यह मत है कि ऊपर की सभाओं को प्रान्तीय विधान में स्थान दिया जायेगा और यह कि उनकी स्थापना प्रान्तों की इच्छा पर निर्भर है। ऐसी दशा में मेरे विचार से यह उचित ही होगा कि ऊपर की सभा या दूसरी सभा के सदस्यों को राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने का अधिकार दिया जाये। संघ-विधान में यह स्वीकार कर लिया गया है कि ऐसी सभाओं की आवश्यकता है, क्योंकि आपने केन्द्र में भी एक दूसरी सभा की व्यवस्था की है। इस समय कई प्रान्तों में ऊपर की सभायें हैं और यदि मैं यह कहूं कि उनके पास नीचे की सभाएं जो कानून भेजती हैं, उनकी त्रुटियों को या यदि कोई बात रह गई हो तो उसको बताकर वे एक उपयोगी कार्य कर रही हैं, तो मैं नहीं समझता कि कोई सज्जन मेरा विरोध करेंगे। मेरा यह विश्वास है कि अधिकतर ऊपर की सभा के सुझावों को नीचे की सभा मान लेती है। यह मैं अपने बिहार प्रान्त के अनुभव से कह सकता हूं। जो सदस्य ऊपर की सभा के सदस्यों को राष्ट्रपति के चुनाव में भाग नहीं लेने देना

[रायबहादुर श्यामनन्दन सहाय]

चाहते हैं, उनके हृदय में मेरे विचार से कुछ भय है। वह भय सम्भवतः इस कारण है कि ऊपर की सभा में अधिकतर जायदाद वाले लोगों के प्रतिनिधि होते हैं। पहले तो मैं इसका कोई कारण नहीं देखता कि जायदाद वाले लोगों को राष्ट्रपति के चुनाव में भाग क्यों न लेने दिया जाये? प्रान्त के गवर्नरों के सम्बन्ध में हमने यह निर्णय किया है कि वह प्रौढ़ मतगणना के आधार पर हो और प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह जायदाद वाला हो या न हो, उसमें भाग ले सकता है। फिर राष्ट्रपति के चुनाव में इस प्रकार का भेदभाव क्यों रखा गया है?

हमने अभी यह निश्चय नहीं किया है कि दूसरी सभा के निर्वाचन में मतगणना का आधार क्या हो। इस सभा को मतगणना का ऐसा आधार निश्चित करने की स्वतंत्रता है कि ऊपर की सभा में इस देश के केवल जायदाद वाले लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं होगा। हम मतगणना का इस प्रकार का आधार रख सकते हैं कि इस देश के विभिन्न क्षेत्रों के अनुभवी लोग जैसे कि उद्योग-धंधों, व्यवसाय, शासन-प्रबन्ध, सार्वजनिक कार्य में लगे हुये अनुभवी लोग ऊपर की सभा में उचित अनुपात में रहें। मुझे विश्वास है कि राष्ट्रपति के चुनाव जैसे महत्वपूर्ण मामले में अनुभवी लोगों का मत लिया जायेगा और हम कोई भी ऐसा कार्य न करेंगे जिससे हम ऊपर की सभा के प्रतिनिधियों के मत से वंचित रहें। इस प्रश्न का एक दूसरा पहलू भी है। राष्ट्रपति के चुनाव सम्बन्धी आदेश में सदस्यों ने जितने भी संशोधन पेश किये हैं, उनसे श्रीमान्, आपको यह स्पष्ट हो जायेगा कि इस सभा का, एक बड़े भाग का मत यह था कि राष्ट्रपति का चुनाव प्रौढ़ मतगणना के आधार पर होना चाहिये। श्रीमान्, यदि यह सम्भव नहीं है तो अधिक से अधिक लोगों को इस सम्बन्ध में अपना मतदान देने का अवसर दिया जाना चाहिये। सम्भवतः हम कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण प्रौढ़ मतगणना के आधार को स्वीकार नहीं कर सके परन्तु हमें अपने बनाये हुये विधान द्वारा स्थापित व्यवस्थापिकाओं के एक भाग के निर्वाचित प्रतिनिधियों को राष्ट्रपति के निर्वाचन में भाग लेने का अधिकार न देकर इसे और भी अधिक संकुचित न बना देना चाहिये। इसका विचार करके कि हमें आगे चलकर बहुत ही महत्वपूर्ण कार्यों को करना होगा और सम्भवतः इस देश को बहुत ही कठिन परिस्थिति का सामना करना पड़े, मेरे विचार से अनुभवी लोगों को महत्वपूर्ण मामलों में भाग न लेने देने में कोई बुद्धिमता नहीं होगी। विशेषतः राष्ट्रपति के चुनाव के मामले में, जिसके सम्बन्ध में सिद्धांततः यह सभी स्वीकार करेंगे कि हर एक नागरिक को उसमें भाग लेने का अधिकार होना चाहिये। मैं प्रस्तावक महोदय को यह सुझाव देना

चाहता हूं कि ऊपर की सभा के सदस्यों के रास्ते में जो रुकावट है उसे हटा देना चाहिये और उन्हें राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेने का अधिकार होना चाहिये।

इस सभा को एक दूसरे प्रश्न पर भी विचार करना है। खण्ड 2 के साथ जो नोट है, उसमें कहा गया है:

''प्रदेशों की आबादी के अनुसार वोटों को बल देने का आदेश इसलिये आवश्यक है कि एक ऐसे छोटे प्रदेश की वोटें जिसकी बड़ी व्यवस्थापिका हो, एक बड़े प्रदेश की वोटों को निरर्थक न कर दें। यह बल इस प्रकार दिया जायेगा। किसी ऐसी व्यवस्थापिका में जहां प्रत्येक सदस्य एक लाख मतदाताओं का प्रतिनिधि हो तो उसे 100 वोटों का बल प्राप्त होगा यानी एक हजार लोगों के लिये एक वोट होगी और जहां व्यवस्थापिका इस प्रकार संगठित हो कि एक सदस्य 10,000 लोगों का प्रतिनिधि हो तो उसे इसी गणना के अनुसार 10 वोटों का बल प्राप्त होगा।''

इस व्यवस्था के अधीन कल्पना कीजिये कि यदि किसी प्रान्त की व्यवस्थापिका के सदस्यों की वोटों की संख्या किसी अन्य प्रान्त की व्यवस्थापिका के सदस्यों की वोटों की संख्या का 1/10 भाग है और यदि पहले प्रान्त की ऊपर की सभा के सदस्य वोट नहीं देते हैं तो उसमें जितना अधिक लोगों का प्रतिनिधित्व होगा उतना अधिक उस प्रान्त को नुकसान उठाना पड़ेगा। राष्ट्रपति के चुनाव में ऊपर की सभा के सदस्यों को भाग न लेने देने से हम कुछ प्रान्तों को अपने पूर्ण मत का प्रदर्शन करने का अवसर ही न देंगे, क्योंकि उसका आधार प्रान्त की कुल जनसंख्या होगी।

श्रीमान् इसके अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं कहना है। मुझे आशा है कि मेरे इस सुझाव को माननीय प्रस्तावक पसन्द करेंगे।

***श्री के. चेंगलाराय रेड्डी** (मैसूर): अध्यक्ष महोदय, मैं यह संशोधन पेश करना चाहता हूं कि खण्ड 1 के उपखण्ड (2) (ख) में जहां कहीं 'सदस्य' शब्द आया है वहां 'निर्वाचित सदस्य' रख दिया जाये। संशोधित खण्ड इस प्रकार होगा:

''सभी प्रदेशों की व्यवस्थापिकाओं के निर्वाचित सदस्य या, जहां व्यवस्थापिका की दो सभायें हों तो नीचे की सभा के निर्वाचित सदस्य।''

श्रीमान्, यह देखा जायेगा कि संघ का अध्यक्ष प्रत्यक्षतया प्रौढ़ मतगणना के आधार पर नहीं बल्कि एक निर्वाचन-मंडल द्वारा चुना जायेगा। प्रौढ़ मतगणना के आधार पर संघ के अध्यक्ष को चुनने के पक्ष में काफी लोगों ने अपना मत

[श्री के. चेंगलाराय रेड्डी]

प्रकट किया है परन्तु चूंकि सारे विधान में मंत्रि-संचालित शासन-प्रणाली की व्यवस्था है न कि राष्ट्रपति-संचालित शासन-प्रणाली की। इसलिये उचित यही होगा कि हम अपने राष्ट्रपति को निर्वाचन-मंडल द्वारा चुनें। परंतु श्रीमान्, इस उपखंड में जिस निर्वाचन मंडल की व्यवस्था है उसके दो भाग हैं। खण्ड (क) में संघीय पार्लियामेंट की दोनों सभाओं का उल्लेख है। इसके बाद खण्ड (ख) आता है जिसमें सभी प्रदेशों की व्यवस्थापिकाओं के सदस्यों का उल्लेख है। जहां तक प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं का सम्बन्ध है मुझे इसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं में नीचे की सभाओं में सभी सदस्य प्रौढ़-मतगणना के आधार पर चुने जाते हैं। परन्तु रियासतों की व्यवस्थापिकाओं के सम्बन्ध में मुझे कठिनाई का अनुभव होता है। जहां तक रियासतों की व्यवस्थापिकाओं का सम्बन्ध है, यह सभी मानेंगे कि रियासतों की व्यवस्थापिकाओं का विधान एक समान न होगा। अपनी-अपनी प्रगति की विभिन्न अवस्थाओं आदि के अनुसार रियासतों में अलग-अलग प्रकार के विधान होंगे। चूंकि मैं इसकी कल्पना करता हूं कि कुछ रियासतों की व्यवस्थापिकाओं में मनोनीत सदस्य होंगे। मैं मतदान देने के अधिकार को केवल निर्वाचित सदस्यों तक सीमित करना चाहता हूं। यह तर्क उपस्थित किया जा सकता है कि हम अप्रत्यक्ष रूप से यह मान ले रहे हैं और इसके लिये सहमत हैं कि रियासतों की व्यवस्थापिकाओं में मनोनीत सदस्य होंगे। श्रीमान्, मैं नहीं समझता कि इससे यह नतीजा निकाला जायेगा क्योंकि मैं तो यह कहूंगा कि यदि यह संशोधन स्वीकार कर लिया गया तो इससे सम्बन्धित रियासतों की व्यवस्थापिकाओं को इसके लिये प्रोत्साहन मिलेगा कि वे मनोनीतकरण की प्रथा को त्याग दें और अपने विधान में भी निर्वाचन-प्रणाली की व्यवस्था करें। यदि कुछ अल्पसंख्यकों को, जिनके सदस्यों को अब रियासतों की व्यवस्थापिकओं में मनोनीत किया जा रहा है, संघ के अध्यक्ष के चुनाव में भाग लेने का अधिकार न दिया जाये तो बहुत सम्भव है कि ऐसे अल्पसंख्यक या अन्य हितों के लोग मनोनीतकरण के बजाय निर्वाचन की मांग करें ताकि उनके इस प्रकार चुने हुए प्रतिनिधियों को संघ के अध्यक्ष के चुनाव में भाग लेने का महत्वूपर्ण अधिकार प्राप्त हो। इसलिये श्रीमान्, चाहे जिस दृष्टि से भी विचार किया जाये, मेरा विश्वास है कि यह संशोधन इस सभा को मान्य होगा। कुछ लोगों का यह विचार है कि विधान के तैयार होने तक रियासतों के ऐसे विधान तैयार हो जायेंगे कि उनमें अपनी व्यवस्थापिकाओं में मनोनीत सदस्य रखने की व्यवस्था न होगी। यदि ऐसा हुआ तो मैं उसका स्वागत करूंगा। ऐसी दशा में विधान का

मसविदा तैयार होने तक इसके लिये काफी समय मिलेगा कि मेरे संशोधन में जिस भेदभाव की कल्पना की गई है, वह मिटाई जा सके। फिलहाल श्रीमान् मैं इस संशोधन को पेश करता हूं और आशा करता हूं कि इसे सभा स्वीकार कर लेगी।

श्री गोकुलभाई भट्ट: सभापति जी, मेरा संशोधन इस प्रकार है। मि. रेड्डी अभी जो ''इलेक्टेड मेम्बर'' रखना चाहते हैं वहां मैं ''टैरीटोरियल इलेक्टेड मेम्बर'' रखना चाहता था। इसका सबब यह है कि बहुत-सी जगह ऐसी होती हैं कि जहां इलेक्टेड होते हैं लेकिन स्पेशल कांस्टिट्युएंसीज बनी हुई होती हैं और इसके मुताबिक अगर वह भी इलेक्टेड माना जाये, तो सच्चे चुने हुए वह नहीं कहलायेंगे। लेकिन मैंने यह सोचा है कि ज्यादा पाबन्दी लगानी चाहिये और सिर्फ यह ध्यान दिलाना चाहता हूं कि जो इलेक्टेड मेम्बर हों वे सचमुच हल्कों से आये हुये होने चाहियें। तो मैं इस संशोधन को रखने के लिये आग्रह नहीं करता। मैं ध्यान उन 'इलेक्टेड मेम्बर' की तरफ दिलाना चाहता हूं कि जो स्पेशल कांस्टिट्युएंसीज से आते हैं और उनमें बहुत-से जागीरदार, जमीदार और दूसरे लैंडलार्ड आते हैं। वह अर्थ न लगाया जाये।

(सर्वश्री विश्वनाथ दास, आर.आर. दिवाकर, युधिष्ठिर मिश्र और जयनारायण व्यास ने अपने संशोधन पेश नहीं किये।)

श्री शिब्बन लाल सक्सेना: सभापति जी, मेरा एमेंडमेंट इस प्रकार है कि क्लाज एक के सब क्लाज (2) और (3) को हटाकर यह रख दिया जाये: ''The Rashtrapati shall be elected directly by the people on the basis of adult suffrage'' यानी जनता राष्ट्रपति का चुनाव सीधे बालिग मताधिकार से करेगी।

यह एक बहुत ही गम्भीर प्रश्न है और मैं इस विषय पर बहुत गहराई से महसूस करता हूं और मैं समझता हूं कि हमने जो स्कीम प्रान्तीय विधान में गवर्नरों के चुनाव के लिये मंजूर की है वह स्कीम हमें इस यूनियन कांस्टिट्यूशन यानी फेडरेशन के विधान के लिये भी स्वीकार करनी चाहिये। हमने प्रान्तीय विधान में गवर्नर को adult suffrage यानी बालिग मताधिकार से चुनने का निश्चय किया है। अभी हम पंत जी और खेर साहब की जोरदार तकरीरें सुनीं और अंत में सरदार पटेल साहब ने मिस्टर मुंशी का अमेंडमेंट स्वीकार किया जिसमें यह कहा गया था कि adult suffrage यानि बालिग मताधिकार पर चुने हुये गवर्नर को कुछ विशेष

[श्री शिब्बन लाल सक्सेना]

अधिकार मिलना चाहिये जो संकटकाल में काम आये। इससे साफ जाहिर है कि सरदार पटेल साहब और यह विधान-परिषद् बालिग मताधिकार से चुने हुये गवर्नर के नैतिक बल के महत्व को और उससे होने वाले लाभ को मानते हैं। इसी तरह मैं समझता हूं कि राष्ट्रपति का चुनाव भी adult suffrage यानी बालिग मताधिकार से होना चाहिये। यह निश्चय है कि सारे देश के 12-13 करोड़ वोटर जिस व्यक्ति को अपना राष्ट्रपति चुनेंगे उसकी नैतिक शक्ति और प्रतिभा सारे देश में अद्वितीय होगी। वह सचमुच जनता का आदमी और उनका सच्चा प्रतिनिधि होगा। इसके अतिरिक्त मैं समझता हूं कि हमारे देश की एकता (unity), जो आज टूट गई है औ कुछ रियासतों के वर्तमान प्रयत्नों को देखते हुये जिस एकता के और भी अधिक टूटने का भय है, उस एकता (unity) को फिर से कायम करने के लिये हम प्रतिज्ञाबद्ध हैं। उसमें बालिग मताधिकार से राष्ट्रपति का चुनाव होना बहुत मदद करेगा। तब ट्रावनकोर से लेकर काश्मीर तक और कलकत्ते से लेकर बम्बई तक देश के कोने-कोने में गरीब से गरीब व्यक्ति भी यह महसूस करेगा कि वह भारतवर्ष के राष्ट्रपति के चुनने का अधिकारी है। अपने भारतीय होने के गौरव को तब वह पूरी तौर से अनुभव करेगा और भारतीय एकता की जड़ इस प्रकार मजबूत होती जायेगी और आज-कल हैदराबाद, काश्मीर, ट्रावनकोर इत्यादि में जो भारत से अलग होने की भावना है वह देश भर से मिट जायेगी। और देश के जो हिस्से हमसे अलग हो गये हैं उनकी जनता में भी फिर से भारतवर्ष में मिल जाने की इच्छा प्रबल होती जायेगी। इसलिये विशेषकर इस वर्तमान अवस्था में मैं राष्ट्रपति के बालिग मताधिकार से चुने जाने को अत्यन्त आवश्यक व लाभदायक समझता हूं।

हमारे देश की नेशनल जीनियस (national genius) भी यही है। हम वीर उपासक (Hero worshippers) हैं। किसी अद्‌भूत तपस्वी और प्रतिभाशाली व्यक्तितत्व के मनुष्य के राष्ट्रपति रहने पर हमारे देश की प्रगति बहुत तेजी से हो सकेगी। 12 या 13 करोड़ वोटरों से चुना हुआ राष्ट्रपति ऐसे नैतिक बल और प्रतिभाशाली व्यक्तित्व को प्राप्त कर लेगा। हम 35 करोड़ आबादी के संसार में सबसे बड़े स्वतंत्र राष्ट्र होंगे। 12 या 13 करोड़ वोटरों के मत से चुने हुये राष्ट्रपति की संसार भर में एक विशेष नैतिक प्रतिभा होगी। उसकी इस नैतिक शक्ति और व्यक्त्वि से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में देश को बहुत लाभ होगा और देश की जनता की वीरोपासना की भावनायें भी इससे तृप्त रहेंगी।

आज महात्मा गान्धी बिना चुने हुये भी हमारे सारे देश के पिता हैं। हम सब उन्हें बापू कहते हैं वह हमारे राष्ट्र के सदैव रहने वाले राष्ट्रपति (Permanent President) के समान हैं। उनके स्थान की पूर्ति चुना हुआ राष्ट्रपति किसी हद तक तब ही कर सकेगा जब देश के 12 या 13 करोड़ मतदाता अपने वोटों द्वारा उसे राष्ट्रपति चुनेंगे। इससे उसे भारी नैतिक बल, प्रतिभा और सम्मान प्राप्त होगा जिससे शासन के दैनिक कार्यों से अलग रहते हुये भी उससे देश को भारी फायदा होगा।

जिस विधान का मसविदा हमारे सामने पेश है वह विधान दो तरह के विधानों का सम्मिश्रण है। एक तो अमरीका के विधान का जहां प्रेसीडेंट का चुनाव सीधे बालिग मताधिकार से होता है और दूसरे विलायत के विधान का जहां प्रधान मंत्री पार्लियामेंट के बहुमत का चुना हुआ नेता होता है। विलायत में भी एक राजा (king) जिसके व्यकितत्व की बहुत भारी प्रतिभा है, और जनता किसी भी प्रधान मंत्री से अधिक उसकी इज्जत करती है और यद्यपि कानून में उसे कोई स्वतंत्र कार्य करने का अधिकार नहीं है, फिर भी वहां का राजा वहां के शासन को सुन्दर बनाने में बहुत उपयोगी सिद्ध होता है। हमारा राष्ट्रपति हमारे विधान में अंग्रेजी राजा (king) के स्थान की पूर्ति करेगा। मैं जानता हूं कि मेरे बहुत से नेता इस बात के पक्ष में नहीं हैं और वह इसका विरोध भी करेंगे। उनका कहना यह है कि हमने जब यह स्वीकार कर लिया कि हम पार्लियामेंटरी (Parliamentary) सरकार चाहते हैं, हम इस तरीके का विधान चाहते हैं जिसमें कि लेजिस्लेचर के चुने हुये नेता सारे राष्ट्र के प्रतिनिधि होंगे और उसकी जिम्मेदारी लिये हुये होंगे। इसलिये राष्ट्रपति का बालिग मताधिकार adult suffrage से चुनाव करना फिजूल वक्त बरबाद करना होगा और इससे खामखा (confusion) गड़बड़ी पैदा होगी। मैं इससे सहमत नहीं हूं। मेरा तो अपना ख्याल है कि जो पार्टी सारे देश के प्रेसीडेंट का चुनाव जीतेगी, वही पार्टी सम्भवतः लेजिस्लेचर में बहुमत रखेगी और उसका बहुमत फेडरल लेजिस्लेचर (Federal Legislature) में होगा।

मिसाल के लिये मान लीजिये कि हम प्रेसीडेंट के लिये अपने परिषद् के सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसाद को चुनते हैं और सरदार पटेल या जवाहरलाल जी को प्रीमियर बनाते हैं तो इन दोनों नेताओं में सहयोग होगा और एक दूसरे की मदद करेंगे। वे आपस में एक दूसरे का सिर नहीं तोड़ेंगे। पन्त जी ने अभी दूसरे प्रस्ताव के समर्थन में कहा था कि अगर प्रेसीडेंट मर जाये तो फिर क्या

[श्री शिब्बन लाल सक्सेना]

होगा। मैं कहता हूं कि प्रेसीडेंट अगर नहीं रहता है तो वहां प्रधान-मंत्री है ही; उसकी मिनिस्ट्री अपना काम कर सकती है और प्रेसीडेंट का फौरन दुबारा चुनाव कर सकती है। पर बर्मा के अनुसार प्रधान मंत्री और उसके मंत्रिमंडल के कत्ल हो जाने पर राष्ट्रपति ही देश की बागडोर संभाल सकेगा और दूसरी मिनिस्ट्री बना सकेगा। मैं कहता हूं कि राष्ट्रपति के चुनाव से देश की शान बढ़ेगी। उसको चाहे हम शक्ति न दें लेकिन वह उस विशेष ओहदे की वजह से शासन के सब कार्यों पर एक खास असर डालेगा। महात्मा गान्धी कहने को तो कांग्रेस के चार आने के मेम्बर भी नहीं हैं लेकिन सब जानते हैं कि सारे देश के काम उन्हीं की राय से चलते हैं और आज आने वाला स्वतन्त्र भारत उन्हीं का निर्माण किया हुआ भारत है। मेरा अपना मत है कि प्रेसीडेंट का चुनाव हर दृष्टि से हमारे लिये लाभदायक है। लेकिन चूंकि मैं इस सम्बन्ध में स्वतंत्र नहीं हूं इसलिये मैं इस सुझाव (Amendment) को पेश नहीं करना चाहता।

***श्री एच. चन्द्रशेखरिया** (मैसूर): अध्यक्ष महोदय, मेरे नाम से जो संशोधन है वह इस प्रकार है:

"खण्ड 1 के उपखण्ड (3) के बाद निम्नलिखित उपखण्ड जोड़ दिया जाये:

'(3 क) राष्ट्रपति पारी-पारी से रियासत और गैर रियासती प्रदेशों से चुना जायेगा'।"

श्रीमान्, आप जानते हैं कि यह प्रस्ताव किया गया है कि संघ के अध्यक्ष को एक निर्वाचन मंडल द्वारा चुना जाये जिसमें संघ की दो सभाओं और संघ के प्रदेशों की व्यवस्थापिकाओं के सदस्य होंगे। इससे यह स्पष्ट है कि यदि किसी समय रियासतों के सदस्य अपने किसी आदमी को अध्यक्ष पद के लिये खड़ा करेंगे तो वह चुनाव में सफल न हो सकेगा, क्योंकि निर्वाचन-मंडल में गैर रियासती प्रदेशों के सदस्यों का ही बहुमत होगा।

रियासतों की जनसंख्या लगभग नौ करोड़ दस लाख है। इसका अर्थ यह है कि वह भारतीय संघ में सम्मिलित प्रान्तों की जनसंख्या की लगभग एक तिहाई है और पाकिस्तानी प्रदेशों की जनसंख्या की लगभग चौगुनी है। संघीय पार्लियामेंट की दोनों सभाओं में जो रियासतों के प्रतिनिधि हैं वे अल्पमत में होते हुए भी उसके महत्वपूर्ण अंग हैं। जहां तक राज-सभा का सम्बन्ध है उसमें कुल

287 सदस्यों में से 71 सदस्य रियासतों के ही हैं। इसी प्रकार लोक-सभा में भी, जो जनसंख्या के आधार पर बनेगी, रियासती प्रदेशों के काफी सदस्य होंगे। इस दशा में यह न्यायोचित ही होगा कि रियासती प्रदेश को हर दूसरी बार राष्ट्रपति पद के लिये अपना आदमी खड़ा करने का अवसर दिया जाये। यदि यह एक अनर्गल मांग समझी जाये तो कम से कम यह व्यवस्था की जाये कि हर तीसरी बार रियासतें अपने आदमी को राष्ट्रपति पद के लिये खड़ा करें।

श्रीमान् आप जानते ही हैं कि रियासतें देश के महत्वपूर्ण अंग हैं। 15 अगस्त के बाद अन्य प्रदेशों के समान रियासतें भी स्वतंत्र हो जायेंगी। परन्तु मेरी अपनी यह इच्छा है कि रियासतें चाहे वे बड़ी हों या छोटी, अलग न रहें। उन्हें इस समय भारतीय उपनिवेश के साथ और विधान बनने पर भारतीय संघ के साथ सहयोग करना चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि सद्भावना हो और रियासतों का कुछ ख्याल किया जाये। मेरा विश्वास है कि इस संशोधन में जिस प्रकार की व्यवस्था रखी गई है उससे हमारे देश के रियासती और गैर रियासती प्रदेशों के सम्बन्ध कुछ हद तक बहुत अच्छे हो जायेंगे। इन शब्दों के साथ मैं सिफारिश करता हूं कि यह सभा कृपा करके इस संशोधन पर विचार करे और इसे स्वीकार कर ले।

*__अध्यक्षः__ आपके नाम एक दूसरा संशोधन भी है।

*__श्री एच. चन्द्रशेखरियाः__ मैंने जो दूसरा संशोधन पेश किया है वह इस प्रकार है:

खण्ड 1 के उपखण्ड (4) के बाद निम्नलिखित नया उपखंड जोड़ दिया जाये:

''(5) संयुक्त राष्ट्र अमेरीका के विधान के अनुरूप यह व्यवस्था की जाये कि राष्ट्रपति कर्त्तव्यपालन की शपथ लेगा।''

संघ के अध्यक्ष को एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व यह भी सौंपा गया है कि वह विधान की रक्षा करे और उसका उल्लघंन न होने दे। विधान का उल्लंघन करने के कारण वह न्यायाधीशों के सामने दोषारोपण द्वारा अपने पद से हटाया जा सकता है। इस कारण यह आवश्यक है और उचित भी है कि राष्ट्रपति शपथ के रूप में इस प्रकार का इकरार करे। सभी विधानों में और विशेषतया संघ विधानों में यह आदेश रहता है कि प्रबन्धकारिणी के अध्यक्ष

[श्री एच. चन्द्रशेखरिया]

को शपथ लेनी चाहिये। उदाहरणार्थ, संयुक्त राष्ट्र अमरीका में प्रेसीडेंट पदासीन होने के पहले कर्तव्य-निष्ठा की निम्नलिखित शपथ लेता है:

"मैं गम्भीरता से यह शपथ लेता हूं और इसकी प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं संयुक्त राष्ट्र अमेरीका के प्रेसीडेंट के कर्तव्य का पालन निष्ठापूर्वक करूंगा और अपनी पूरी योग्यता से संयुक्त राष्ट्र अमेरीका के विधान को बनाये रखूंगा तथा उसकी रक्षा करूंगा।"

आयरलैंड के विधान में भी इसी प्रकार का एक आदेश है। वह इस प्रकार है:

"प्रेसीडेंट पद ग्रहण करते समय राष्ट्रीय पार्लियामेंट की दोनों सभाओं के सदस्यों और सुप्रीम कोर्ट तथा हाईकोर्ट के न्यायाधीशों और अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों की उपस्थिति में सार्वजनिक रूप से निम्नलिखित घोषणा करेगा:

'सर्वशक्तिमान परमात्मा के सम्मुख मैं गम्भीरतापूर्वक व सच्चे हृदय से यह प्रतिज्ञा करता हूं और यह घोषणा करता हूं कि मैं विधान और कानून के अनुसार निष्ठापूर्वक व सच्चाई के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करूंगा और मैं अपने पूरे बुद्धिबल से आयरलैंड के लोगों की सेवा व उनका हितसाधन करूंगा। परमात्मा मुझे इसके लिये निर्देश दे और उसका पालन करने की शक्ति दे'।"

हमारे विधान में इस प्रकार की कोई भी सपथ रखी जा सकती है और संघ के अध्यक्ष को पद ग्रहण करने के पहले इस प्रकार की शपथ लेनी चाहिये।

इसलिये मैं सिफारिश करता हूं कि यह सभा कृपा करके इस संशोधन पर विचार करे और इसे स्वीकार कर ले।

***अध्यक्ष:** अब एक बज गया है, इसलिये अब सभा कल दस बजे तक के लिये स्थगित रहेगी।

इसके बाद परिषद् बृहस्पतिवार, 24 जुलाई सन् 1947 ई. के दिन के दस बजे तक के लिये स्थगित रही।